॥ हरिः ॐ ॥

मौनएकांत की पगदंडी पर

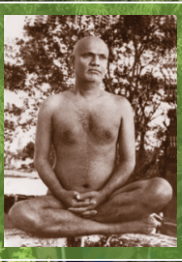

पूज्य श्रीमोटा

हरिः ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

॥ हरि:ॐ ॥

मौनएकांत की पगदंडी पर

पूज्य श्रीमोटा की मुक्तिदायक पावन-वाणी मौनएकांत के साधकों के समक्ष

: संकलन :

डॉ. रमेश म. भट्ट

: अनुवादक :

भास्कर भट्ट

रजनीभाई बर्मावाला

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सूरत

❑ **प्रकाशक :**
हरि:ॐ आश्रम, जहाँगीरपुरा, कुरुक्षेत्र, रांदेर,
सूरत-३९५००५, भ्रमणभाष : ९७२७७ ३३४००
Email : hariommota1@gmail.com
Website : www.hariommota.org

© सर्वाधिकार - ट्रस्टीमंडल, हरि:ॐ आश्रम, सुरत

❑ प्रथम संस्करण : गुरुपूर्णिमा, वि.सं. २०७०

❑ प्रतियाँ : १०००

❑ पृष्ठ संख्या : ८+१३६-१४४

❑ मूल्य : रु. २०

❑ प्राप्तिस्थान :
(१) **हरि:ॐ आश्रम,** सुरत-३९५००५
(२) **हरि:ॐ आश्रम,** नडियाद-३८७००१

❑ डिझाइनर : मयूर जानी, मो. ९४२८४०४४४३

❑ अक्षरांकन : **अर्थ कॉम्प्यूटर**
२०३, मौर्य कोम्प्लेक्ष, सी.यु.शाह कॉलेज के सामने,
इन्कमटैक्स, अहमदाबाद-३८००१४, फोन: (०७९) २७५४३६९९

❑ मुद्रक :
साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.
सिटी मिल कम्पाउन्ड, कांकरिया रोड, अहमदाबाद-३८००२२
फोन: (०७९) २५४६९१०१

॥ हरिः ॐ ॥

निवेदन

पू. श्रीमोटा हरिः ॐ आश्रम, सुरत में मौनार्थिओं समक्ष अपनी पावन वाणी द्वारा मौनएकांत की पद्धति के बारे में और जीवनविकास के प्रति किस तरह सावधान रह सकें उसके बारे में बोध देते थे । उस पावन वाणी को संग्रहीत स्व. श्री चूनीभाई तमाकुवाला और स्व. श्री चंपकभाई भूतवाला ने की थी । पू. श्रीमोटा उसे पढ़ लेते थे । इससे उसे अधिकृत मान सकते हैं।

पू. श्रीमोटा की इस पावन वाणी की हस्तलिखित नोंध की नोट-बुक सुरत आश्रम के मौनमंदिरों में रखी गई थी, जिसके पठन से किसी साधक को प्रेरणा मिल सके ।

कुछ साधकों की विनती से उस पावन-वाणी का संकलन स्व. डॉ. रमेशभाई भट्ट (Ph.D.) ने पाँच पुस्तकों में किया है। उनमें से इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद हमारे ट्रस्टीमंडल के एक ट्रस्टी श्री रजनीभाई बर्मावाला ने किया है ।

इस पुस्तक का चतुरंगी मुखपृष्ठ तथा मुद्रणकार्य श्री श्रेयसभाई पंड्या, मे. साहित्य मुद्रणालय (प्रा.) लि., अहमदाबाद द्वारा पू. श्रीमोटा के प्रति अपने प्रेमभक्तिभाव से किया है, उनका आभार मानने के लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं हैं ।

इस पुस्तक के पठन से साधकजन यथोचित लाभ उठाएँगे ऐसी शुभेच्छा हम व्यक्त करते हैं ।

गुरुपूर्णिमा, वि.सं. २०७०
दि. १२-७-२०१४

ट्रस्टीमंडल
हरिः ॐ आश्रम, सुरत

॥ हरि:ॐ ॥

अनुवादक का अनुभव

हरि:ॐ आश्रम, सुरत के ट्रस्टीमंडल के आदेश पर श्री रजनीभाई 'हरि:ॐ' द्वारा मुझे पूज्य श्रीमोटा के प्रवचनों की दो पुस्तकें 'मौनएकांतनी केडीए' तथा 'मौनमंदिरनुं हरिद्वार' गुजराती से हिन्दी में अनुवाद करने का कार्य दिया गया उसके लिये मैं हरि:ॐ आश्रम, सुरत ट्रस्टीमंडल का आभारी हूँ ।

जब मुझे यह कार्य दिया गया, तब प्रवचनों को पढ़कर मुझे इस कार्य की गहनता का ज्ञान हुआ । मुझे लगा कि मैं शायद पूज्य श्रीमोटा के प्रवचनों के मर्म को सही रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकूँगा । बड़ी ही हिचकिचाट के साथ ट्रस्टी श्री रजनीभाई की सहायता, अनुवाद में मिलेगी ऐसे उनके प्रोत्साहन से कार्य प्रारंभ किया । धीरे-धीरे महसूस हुआ कि पूज्य श्रीमोटा स्वयं मुझे मार्गदर्शन देते जा रहे हैं । आज इन दो पुस्तकों का अनुवाद पूज्य श्रीमोटा के आशीर्वाद से ही आप के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ । उसमें जो भी क्षति हो वह मेरी और रजनीभाई की है, उसे नीर-क्षीर भाव से देखकर क्षमा करने की प्रार्थना है ।

पूज्य श्रीमोटा का जीवनसंदेश है 'नामस्मरण' । जब मुझे इन पुस्तकों का कार्य मिला, मेरा जीवन बहुत कठिन परिस्थितियों में से गुजर रहा था । मेरे मन में शांति नहीं थी, मैं अत्यंत चिंतित था । अपनी आर्थिक कठिन परिस्थिति से । परंतु अनुवाद करते-करते मैंने उनके जीवनसंदेश को अपना लिया और चलते-फिरते, खाते-पीते, कोई भी कार्य करते, प्रात: उठते समय, रात्रि सोते समय

मेरे इष्टदेव का नामस्मरण करना प्रारंभ कर दिया । आज कई महीनों से यह नामस्मरण कर रहा हूँ । उससे मन में शांति प्राप्त हुई । इन महीनों में कुछ समस्यायें भी आईं परंतु पूज्य श्रीमोटा के आशीर्वाद से उनका समाधान हो गया ।

यह मेरा स्वयं का अनुभव है । जपयज्ञ को भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कहा है । उसका यह पूज्य श्रीमोटा द्वारा जीवनसंदेश अनुपम है । नामस्मरण अत्यंत सरल है । हर परिस्थिति में कोई भी यह कर सकता है और यह अपूर्व साधन है, जो किसी के भी जीवन को प्रभावित कर सकता है ।

अंत में पूज्य श्रीमोटा के श्रीचरणों में यह अनुवाद समर्पित करके उनका सदैव स्मरण करता रहूँ यही प्रार्थना करता हूँ ।

॥ हरिः ॐ ॥

गुरुपूर्णिमा, वि.सं. २०७० – **भास्कर भट्ट**
दि. १२-७-२०१४

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	हरि को भजते हुए	१
२.	सुख का उपाय	९
३.	प्रेमपूर्वक त्याग	१५
४.	उत्तम सेवा	२८
५.	साधना का रहस्य	३६
६.	भक्तों के दुःख	५१
७.	जप ही यज्ञ	५५
८.	भावना की धारणा	५८
९.	सच्चा तप	६५
१०.	कर्म का महत्त्व	७२
११.	मौनमंदिर किस लिए ?	८०
१२.	संसारव्यवहार	९०
१३.	भावना का महत्त्व	९७
१४.	संत का सूक्ष्म कार्य	१०३
१५.	स्मरण का अभ्यास	१११
१६.	'मोटा' के साथ दोस्ती	१२२

मौनएकांत की पगदंडी पर

❑

पूज्य श्रीमोटा

मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ।

श्रीमोटा

॥ हरिः ॐ ॥

१. हरि को भजते हुए

हरि को भजते हुए अभी तक किसी की लाज गई नहीं जानी रे,
जिसका ध्यान शामलिया के साथ बोले वेद वाणी रे ।

प्यारे ने बचाया प्रह्लाद, हिरणाकंस मारा रे,
विभीषण को दिया राज, रावण का किया संहार रे...हरि को(१)

प्यारे ने नरसिंह महेता को अपने हाथों से दिया हार रे,
ध्रुव को दिया अचल राज, स्वयं का करके रखा रे...हरि को(२)

प्यारे ने मीराबाई का जहर कातिल पीया रे,
पांचाली के पूरे वस्त्र, पांडवों के काम किये रे...हरि को(३)

ऐसा हरि भजन का अरमान, भजन कोई करेगा रे,
कर जोड़ कहे प्रेमलदास भक्तों के दुःख हर लेंगे रे...हरि को(४)

हमने अभी जो भजन गाया, वह दिखता है सीधा सादा, परंतु 'इस' मार्ग पर जाना हुआ, तब मेरे गुरुमहाराज ने यह भजन गाने की सलाह दी । यह भजन मुझे भी सादा लगा । उसका अर्थ उस समय मुझे समझ नहीं आया, परंतु धीरे-धीरे समझने लगा । उसका रहस्य गहरा है । पहले पद में 'हिरणाकंस मारा' ऐसा नहीं कहते हैं, लेकिन 'प्यारे ने बाचाया प्रह्लाद' ऐसा कहा है । इसलिए प्रह्लाद में जैसी जीवंत जागृत तमन्ना थी वैसी तमन्ना हमारे में जागे और वैसी तमन्ना से हिरणाकंस का नाश हो । हमारे में भी दोनों वृत्तियाँ होती हैं । परंतु दैवी वृत्तियों को जागृत करेंगे तो आसुरी वृत्ति का अपने आप नाश होता है । इसलिए यहाँ तो पहले सख्त होना है और तो ही इस मार्ग में आगे जाने का मौका मिलता है।

विभीषण को राज्य

दूसरे पद में विभीषण को राज्य देने की बात है, वह राज्य कैसा ? हम लोगों की समझमें है वैसा राज्य नहीं, परंतु वह तो राम का परम भक्त था । सामान्य राजा नहीं, उसे तो आत्मा का राज्य मिलता है । वह भगवान में लीन हो जाय, समर्थ बन जाय, इस प्रकार के चेतन का राज्य मिलता है ।

हाथोंहाथ हार

तीसरे पद में 'नरसिंह मेहता को हार' अपने हाथों से देने की बात गाई है । हम ऐसी बातों को हँसी में टाल देते हैं । मैं तो छोटा आदमी हूँ । मेरा बखान करने को नहीं कहता हूँ । परंतु मेरे जीवन में भी ऐसी प्रत्यक्ष बनी हुई वास्तविकता कहता हूँ । मुझे भी भगवान ने ऊपर से दिया है । मैं हरिजन सेवक संघ में काम करता था । चंदे के बारे में कई प्रसंग बने हैं । परीक्षितलालभाई आदि इस बारे में जानते हैं । ऐसे एक-दो अवसर के बारे में कहता हूँ । एक समय ठक्करबापा के ७० वें जन्मदिन के निमित्त ७०,००० रु. का चंदा इकट्ठा करने का तय किया । महात्मा गांधीजी ने भी इस बारे में लिखकर 'हरिजन' में छपवाया । मैं उस समय कराची में था, सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कुं. के मैंनेजर के वहाँ रहता था । मुझे उस समय बहुत दु:ख हुआ । मैं संघ में भी कई साल रहा । परंतु गरीबी के कारण चंदे में देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं था । मुझे अत्यंत वेदना हुई । रोना भी आया । हमारे में सद्भावना जागे उतना ही नहीं है, परंतु आंतरिक रूप से भाव रखना चाहिए । उसके बिना सद्भावना का अर्थ नहीं है । उसे आकार देना चाहिए । उससे ही निराकार साकार में परिवर्तन हो सकता है । चेतन अणु-अणु में फैला । यह अनंत काल की प्रक्रिया है, ऐसी जीवंत जागृत

भावना होनी चाहिए। उस समय चागला साहब कोर्पोरेशन के मेयर थे। वे कुरान के भक्त थे। वे कुरान पढ़ते उसका मैं जैसा समझता था वैसे अर्थ करता और कहता। पादरी आता और कहे कि 'I and father are one.' उनको भी कहता कि यह तो हमारे वेदांतकाल का सिद्धांत है। एक समय चागला साहब के बंगले के पास खड़ा था। वहाँ पुड़िया में रु. १० की नोट मिली। कराची के रास्ते साफ। जमदेशजी (मेयर) की मेहनत के कारण सफ़ाई के बारे में कराची हिदुस्तान में प्रसिद्ध था। उस पुड़िया में लिखा हुआ था और वह उर्दू में था। मैने वह चागला साहब से पढ़वाया, उसमें लिखा था कि 'इस पुड़िया की रकम जिसे मिले वह अपनी इच्छा के अनुसार खर्च कर सकता है।' इस तरह मेरी चंदे में रकम देने की व्यवस्था अपने आप हो गई।

दूसरी बार मालवियाजी ने चंदे के लिए अपील की। मालवियाजी विद्वान थे। हमारी हिंदू संस्कृति के प्रतीक समान थे। उनकी अपील के जवाब में चंदा देने की प्रबल इच्छा थी। उसी दरमियान एक समय चंद्रभागा और साबरमती के बीच हेमंतभाई के साथ जा रहा था। उनके पास तो ईश्वर के दिये हुए दो पैसे हैं। इससे उन्होंने तो रु. ५१/- भेज देने के लिए कहा। परंतु मेरे पास तो कुछ था नहीं। मैं उनकी अपील के जवाब में कुछ दे सकूं, ऐसी प्रबल तमन्ना थी। उस समय भी भगवान ने मेरा काम किया। मुझे चलते-चलते लघुशंका हुई। मैं लघुशंका करने बैठा। वहाँ पुड़िया मिली। उसमें दो अंगूठी मिलीं। उसमें भी पहेले के समान लिखा हुआ था। जीवन में ऐसी सात-आठ घटनाएँ हुई हैं। इसलिए यह हकीकत बन सके वैसी है, यह सत्य हकीकत है। हमारी बुद्धि चाहे स्वीकार न करे, परंतु भक्तों के जीवन में हुआ है और अभी भी

होता है । परंतु सही बात तो लगन लग जानी चाहिए । जिसे ऐसा हो जाता है उसकी-वैसे भक्तों की कभी भी आबरू जाती नहीं है । मेरे तुम्हारे जैसों की आबरू चली जाती है ।

मीराबाई का ज़हर

बाद के पद में 'प्यारे ने मीराबाई का ज़हर कातिल पीया रे' हमारे में तो कातिल ज़हर भरा हुआ है । लोभ, काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या फैले हुए हैं । हम भी चेतना की अपेक्षा से भक्त बन कर रहे तो 'वह' कातिल ज़हर पी जाते हैं । इससे यह सब दूर हो । मैंने तो यह सब रूपक के अर्थ में लिया है । ऐसा तुरंत होता नहीं है । उसके लिए 'with conscious motive' प्रबल पुरुषार्थ करो तो ज़हर जरूर पी जायेंगे । आज भी ऐसे हैं और अनेक लोगों ने कहा है कि मीराबाई का ज़हर पीया और पांचाली के वस्त्र पूरे । **हमें भी पांचाली की तरह नग्न होना है, वस्त्र निकाल कर नहीं परंतु मोह-ईर्ष्यारूपी ढक्कनों जो हमसे जुड़े हुए हैं उन्हें निकाल देना है और उस तरह के वस्त्रों से मुक्त होना है । और वैसा हो तो भगवान चेतन रूपी वस्त्र पहनाते हैं ।**

भक्तों के दुःख

अंत में 'ऐसा हरि भजने का आनंद लेने, भजन कोई करेगा रे' गाया है । लिखनेवाले ने विशेष सत्य रखा है । भक्तों को भी दुःख होता है । उनको उनके आसपास रहे हुए कई लोगों को दुःख से पीड़ित देखकर चैन नहीं मिलता । वह तो सब में चेतन को देखता है, और उस तरह लोगों को दुःखी देखकर सहन नहीं कर पाता । वे सब भगवान के मार्ग पर जावें तो सुख प्राप्त करेंगे । संत-भक्तोंने आधार दिया है भगवान की शरण । उससे सहारा मिलता है, सहाय मिलती है और क्लेश, दुःख, बैचेनी आदि में भगवान

की शरण से हलकापन होता है। संसार-व्यवहार में दूसरा भी एक पहलू है और वह उलझन-तकलीफों से ढँका हुआ है। ज्ञानी को भी वैसा होता है, परंतु संसार के लोग उससे परेशान हो जाते हैं, भक्त कभी परेशान नहीं होता है। इतना फर्क है। कोई मनुष्य बाकी नहीं है और बाद में यह सब रहेगा, परंतु भक्त के हृदय में शांति, धैर्य, प्रसन्नता, तटस्थता बनी रहती है। सब की इच्छा वैसी होती है, परंतु कोई ऐसा इंजेक्शन नहीं है कि वैसा बन जाँय। उसके लिए एक ही आधार और वह है भगवान का स्मरण-ऐसा भक्त कह गये हैं। और वह प्रयोगात्मक है ऐसा कह गये हैं। इतना ही नहीं परंतु न्योछावर करके-याहोम करके कह गये है। यह जैसे-तैसे बताया नहीं, करुणा लाकर वैसा किया है। इस कारण जरूर शांति मिलेगी।

अखंडता से ऊर्ध्वगमन

मुझे हिस्टीरिया हुआ था, मिरगी आती थी और मैं नर्मदा में आत्महत्या करने गया था। तब किसी साधु ने मुझे नामस्मरण करने को कहा था। उस समय मुझे कुछ समझ में नहीं आया था। नामस्मरण करने का कहा उससे तो कोई जड़ीबुट्टी दी होती तो मुझे ज्यादा पसंद आया होता। शब्द से बीमारी मिटे वह बात मानी नहीं। इससे नाम लिया नहीं। तीन महीने बाद बडोदरा गया था। किसी भाई के वहाँ तीसरी मंज़िल से नीचे गिरा, लगा भी सही, तब मुझे साधु की बात याद आई। उस हालत में उस साधु के दर्शन हुए और प्रयोग करने को कहा। इसलिए प्रयोग करने में क्या जायगा ऐसा सोच के नामस्मरण करना शुरू किया। पहले तो बीच-बीच में भूल होती, भूल जाता ऐसा करीब तीन महीने चला। frequency आये ही नहीं। Intensity भी कम हो रही थी। फिर मुझे जोश

आया, जहाँ तक अजपाजप-अखंडता प्रकट नहीं होगी, वहाँ तक करणों का sublimation ऊर्ध्वगमन नहीं होगा । सात्त्विक रीति से वैसा तभी होगा यह गणितशास्त्र के समान स्पष्ट बात है । यों गुड़ खाने से मीठा हो जाय वैसा वह नहीं है । अनुभव करना हो तो लगा रहना पड़ेगा । अभ्यास के बिना किसी भी विषय का हार्द जान नहीं सकते । उसके लिए बैराग्य चाहिए । वैराग्य यानी अनासक्ति और निरहंकारीत्व का sumtotal । वैसी भावना लोगों में बहुत कम होती है

दुर्लभ मनुष्यदेह

लोगों में आशा, लोलुपता, तृष्णा होती है । जगत में सब जगह ऐसा देखने में आता है । संघ (हरिजन सेवक संघ) में भी ऐसा देखता । जगत द्वंद्व का बना हुआ है । स्वार्थ-परमार्थ, प्रकाश-अंधकार इन सब पहलुओं पर विचार करने का मित्रों को कहता हूँ । वे कहते हैं कि व्यापार कैसे होगा ? मैं कहता हूँ कि अभी मंदी है, तब तो करो । दो पैसे का परमार्थ करो । स्वार्थ अकेला नहीं चलेगा । मनुष्यजीवन बहुत दुर्लभ है । यह इधर-उधर फेंकाफेंकी की बात नहीं है । संतभक्तों ने भी मनुष्य-देह दुर्लभ कहा है । चौदह प्रकार की योनि हैं । उनमें यह मनुष्य योनि ही उत्तम है । क्योंकि हम में बुद्धि है । देव आदि योनि में एक ही प्रकार का जीवन होता है । पशुयोनि में भी भय, भूख, मैथुन, निद्रा ये चार वस्तु होती हैं, परंतु कोई विवेक नहीं होता ।

कर्मकला

हम एक कर्म करते हुए अनेक प्रकार के विचार करते हैं । और वैसा करके अनेक कर्म पैदा करते जाते हैं । हम भले ही संसार के किसी भी कर्म को कर रहे हों, परंतु एकमात्र उसी कर्म का

विचार करते रहें, एकाग्रता वहीं ही हो तो वह कर्म अच्छा होता है और ऐसा उत्तम प्रकार का कर्म शांति, प्रसन्नता, धैर्य, समता के प्रकट हुए बिना नहीं होता । उसके सिवा आप कर्म भी नहीं कर सकते । अहम् के साथ सिद्धांत की बात नहीं करोगे तो ही कर्म अच्छी तरह कर सकोगे । यह सब प्रकट हुआ हो तो ही उत्तम कर्म होगा । ऐसा कई भाइओं को कहता हूँ ।

हरिजन सेवक संघ से तो मुझे गेहूँ में से कंकर निकाल डालते हैं, उसी तरह निकाल दिया है । काम करता था, तब प्यारा लगता था । मैं कभी भी बोलता नहीं, मौन रहकर काम करता । कभी भी प्रवचन नहीं दिया । भगवान का अनुभव करने ही प्रवृत्ति की है । कार्यकर्ता सेवा की बातें भले ही करते हो, परंतु स्वभाव, प्रकृति तो उसके कर्म में दिखती ही है ! और वह माध्यम medium तो सही है न ! रागद्वेषवाली बुद्धि हो तो वह कर्म में दिखेगी ही, इसलिए रागद्वेष बढ़ेंगे, भेद बढ़ेगा । गांधीजी ने कहा कि अहिंसा का पालन करो, परंतु सच्चे अर्थ में किसीने वैसा किया नहीं । इससे भेद बढ़ने लगा । उत्तम कर्म के लिए शांति, प्रसन्नता, धैर्य को विकसित करने की खास जरूरत है । किस तरह वैसा करें वह समस्या है । उसका उपाय यही है कि उलझन आये, तब उस विषय से दूर हो जाना, तो हल अपने-आप मिलेगा । मैं पढ़ता था, तब भूमिति में समस्या आती, तब पेशाब करने या शौच करने जाता, तब उसका हल मिलता । इसलिए हमें समस्या आने पर उस विषय से दूर हो जाना चाहिए । द्वंद्व और भेद की पद्धति से दूर होते जायेंगे तो गीताजी में कही है वैसी द्वंद्वातीत-गुणातीत की भूमिका प्रकट होगी । यह दुर्लभ नहीं है । जिस तरह नदी में पानी बहता है, जिस तरह श्वासोच्छ्वास लिए जाते हैं-उतना ही वह सरल

है । हमारे में चेतन है, परंतु तमन्ना नहीं है । हेतु नहीं है । हमारे चेतन का कोई अर्थ नहीं है । हमें जीवन की परवाह नहीं है । मनुष्यत्व-मानव शरीर की हमें परवाह नहीं है । हम द्वंद्व में इतने मस्त हो गये हैं कि यह अलग करना मुश्किल है । इसलिए यह एक साधन है । उससे जुड़ोगे तो कोमल भूमिका उत्पन्न होगी । मन से तो मनुष्य विचार करे, परंतु हृदय कोमल नहीं है । इसलिए करुणा उत्पन्न नहीं होती है । भावना प्रकट नहीं होती है । समर्थ कार्यकर्ता-सेवकों में भी भगवान के लिए निष्ठा प्रकट नहीं होती है । निष्ठा प्रगट हो तो समाज के कई काम हो सकते हैं । भगवान यानी चार हाथ वाले भगवान चित्र में होते हैं वैसे नहीं, परंतु सर्वत्र व्याप्त चेतन स्वरूप । उसे हृदय में स्थापित करें और उसके द्वारा सेवा करें तो समाज को उन्नत करने में बहुत मदद होती है ।

संत का सहारा

इतिहास भी गवाह देता है । मध्ययुग में जब बहुत त्रास फैला हुआ था, तब संतों की परंपरा जागी । वे किसी को कुछ कहने नहीं गये थे कि हथियार पकड़ो, परंतु उनके अस्तित्व मात्र से लोगों के दिल में प्रकाश फैल गया । भगवान के भक्तों के कारण ऐसा हुआ । उन लोगों के अस्तित्व से हिंदू संस्कृति टिकी है । **लोगों की मानसिक भावना को जरा भी ऊपर लाये वह भी बड़ी सेवा है ।** स्थूल सेवा की अपेक्षा यह अच्छा है । हम सेवकों को यह इतिहास की बात समझने जैसी है । हम भी महात्मा गांधी के पास सीखे हैं । शरीर जरूरी नहीं है ऐसा भी नहीं, परंतु ऐसा न प्रगट हो वह भी योग्य नहीं ।

हमारे में होगा तो हम दूसरे को दे सकेंगे । समाज-व्यक्ति एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं । इसलिए गुणदोष भी आयेंगे । सिर्फ

कर्म करना-दूसरा कुछ नहीं । चाहे भूखे मरना पड़े, परंतु इसके अलावा (भगवान के अलावा) कर्म करना नहीं । गरीबी थी फिर भी ऐसा व्रत लिया था ।

गुरुमहाराज ने कहा था कि संस्था का, कोंग्रेस का सदस्य मत बनना । हरिजन सेवक संघ में व्रत लेना पड़ता है । तीन वर्ष हरिजन की सेवा करना । मैंने सदस्य बनने से मना कर दिया । इतना ही नहीं व्रत लेने का भी मना कर दिया । मैं तो हरि का मनन-चिंतन करूँगा । रखना हो तो रखो नहीं तो नहीं । मुझे तो गुरुमहाराज ने ऐसा सिखाया है । समाज को ध्यान में रखें तो समाज का स्मरण होगा । चेतन को-निराकार को ध्यान में रखें तो वैसा होगा । इस काल में भगवान के नामस्मरण के साधन के अलावा दूसरा कुछ भी योग्य नहीं है । योग-हठयोग है । उससे जल्दी लाभ मिलेगा परंतु उसके लिए जरूरी चित्तवृत्ति इस काल में नहीं है । बहुत थोड़े लोग वह कर सकते हैं । आमजनता के लिए तो नामस्मरण जैसा कोई साधन नहीं है । वह कोई भी कर सके-ले सके वैसा यह सरल साधन सब को लागू हो सकता है । यह करें तो ऐसी भावना प्रगट होती है । अभ्यास द्वारा अजपाजप तक ले जावे तभी पता लगेगा कि उसका क्या अनुभव है ।

दिनांक : १६-८-१९५९

॥ हरि:ॐ ॥

२. सुख का उपाय

व्यवहार में प्रकृति

भगवान का नामस्मरण वह एक ऐसा शब्द है कि जिनकी बुद्धि प्रकाशमान है, उन्हें तर्क हुए बिना नहीं रहेगा। ऐसे लोग सोचते हैं कि उससे जीवन में क्या बदलाव आएगा ? उसके बदले जीवन में दूसरी कोई प्रवृत्ति करें, समाज की सेवा करें, समाज के अंदर समाज के दूसरे जीवों के लिए हिस्सा ले सकें, तो बदलाव आएगा। मुझे भी उस समय में ऐसा लगता था। भगवान के नामस्मरण मात्र से जीवन में उन्नति होगी ऐसा स्वीकार नहीं कर सकता। इसका हल मुझे मिलता नहीं था, परंतु धीरे-धीरे अनुभव से मुझे लगा कि मनुष्य की प्रवृत्ति के साथ प्रकृति और स्वभाव जुड़े हुए हैं। हम मनुष्यों के साथ प्रत्येक प्रवृत्ति स्वभाव और प्रकृति के अनुसार ही करते हैं। हम जीवों के साथ के संबंधों में भी वैसा ही करते रहते हैं। व्यवहार में जिस तरह वर्ताव होता है, उसका medium (माध्यम) प्रकृति और स्वभाव है। हम कितने ही मानविओं के साथ प्रवृत्ति के कारण जुड़े हुए होते हैं। जिन-जिन जीवों के साथ जुड़े हुए होते हैं, उन सभी की प्रकृति और स्वभाव अलग अलग प्रकार के होते हैं। और उस प्रकृति और स्वभाव के अनुसार ही वर्तन होता है। इसमें इच्छा-अनिच्छा का कोई प्रश्न रहता नहीं। जिस तरह अग्नि गरम है, ऐसा हमारी समझ के कारण लगता है, उसी तरह कर्म को भी अलग-अलग रीति से करना होता है और संत-महात्मा वैसा करते होते हैं।

प्रवृत्ति की पसंदगी

कर्म व्यवहार में अनेकों के साथ के संबंधों में प्रकृति-स्वभाव के कारण अशांति, संघर्ष, उलझन, तक़लीफ प्रगट होती है, शांति

नहीं रहती । ऐसे संत-महात्मा जीवन में अनेक जीवों के साथ इस रीति से संबंध में होते हैं और वैसे उसके कारण सभी के साथ में जीवदशा में भाग लेते होते हैं । समाज में हम किसी के पिता, माता, बहन, भाई, पुत्री, पुत्र होते हैं । जीवन में प्रत्येक के साथ जिस तरह का संबंध होता है, उस तरह का व्यवहार करते हैं । उनके कारण हमें दु:ख-अशांति आदि होते हैं, और हमारे कारण उन्हें भी ऐसा होता है । संसार में दूसरे जीवों से हमें परेशानी, संताप, उद्वेग, अड़चन, तकलीफ हुए बगैर नहीं रहती है । उससे मुक्त होना हो तो किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति करें तो मुक्त नहीं हो सकते । प्रवृत्ति उस प्रकार की होनी चाहिए कि जिससे दूसरे के साथ कम से कम संपर्क हो और हम उससे अलिप्त होते जाँय । ऐसी प्रवृत्ति वह नामस्मरण है । उसके साथ हमारी चालू प्रवृत्ति भी हो सकती है ।

नामस्मरण से एकाग्रता

भगवान की कृपा से मुझे मिरगी नाम की बीमारी हुई । मुझे एक महात्मा ने नामस्मरण करने को कहा । **उसमें ऐसा बल प्रकट होता गया कि उसके कारण गुंजन प्रकट होने लगा । शब्द के गुंजन के कारण भावनापूर्वक उच्चारण होने लगा और जब वह भावनापूर्वक होने लगा तब धुन प्रगट होने लगी ।** यह जो करे उसे ही पता लगता है । यह हकीकत की बात है । कल्पना की बात नहीं । जब नामस्मरण में सातत्य प्रकट होगा, तब धुन प्रकट होगी और धुन प्रकट होगी तो लय (रिधम) आयगी, उसके कारण डोलन होने लगता है और डोलन होने की स्थिति से एकाग्रता आपने-आप होती है । नामस्मरण में जैसे-जैसे सातत्य बढ़ेगा वैसे-वैसे वह अत्यंत गाढ़ा होता जाएगा । ऐसा हो, तब प्रवृत्ति

करते हुए भी, दूसरों के साथ संबंध होते हुए भी दुःख, उद्वेग, संताप इत्यादि की उपस्थिति होते हुए भी वह अलिप्त रहता है । जैसे-जैसे आप आगे बढ़ते जाएँगे वैसे-वैसे अशांति नहीं लगती ।

नामस्मरण से आत्मबल

विमुख बनें तो समाधान मिलता है । इसलिए प्रवृत्ति करते करते उससे विमुख होकर वह करते जाना चाहिए । इसलिए नामस्मरण से प्रवृत्ति में रहें तो वह सुखद बनती है और आत्मबल टिकता है । यह अनुभव की हुई हकीकत है । भगवान का स्मरण यह अभी की जीवदशा की प्रवृत्ति से अलग है । हम द्वंद्वातीत, गुणातीत नहीं हुए हैं । नामस्मरण से यह स्थिति प्रकट होती है । क्लेश, संताप, दुःख, मुसीबत कम होती है । नामस्मरण के कारण धीरे-धीरे ऐसा अनुभव हुआ । १२-१४ घंटे काम करता था । उस समय कुछ देर के लिए भी भगवान के गुणधर्म के लिए और उसके मनन-चिंतन के लिए इच्छा होती, बाकी टिकती नहीं । नामस्मरण अकेले से नहीं चलेगा ऐसा लगा । उस समय गुरुमहाराज ने कहा कि सातत्य प्रकट हो वहाँ तक ले जाओ, दूसरे किसी झमेले में पड़ना नहीं । जैसे-जैसे भावना पूरी तरह शब्दों में प्रकट होगी और सातत्य प्रकट होगा वैसे-वैसे भावना में गाढ़ता प्रकट होती है । और ऐसी अखंडता प्रकट होगी, तब समाज में रहने पर भी दुःख नहीं होगा । यह हकीकत की बात है । संघर्ष, अशांति, दुःख में से उबरने की सभी की इच्छा होती है, परंतु वैसे उसमें से बच नहीं सकते । उसमें से उबरने के लिए तो ऊँची प्रवृत्ति में सतत निरंतर लगे रहें, कूद पड़ें और उसके बारे में सदैव सावधान रहें, ऐसी भावना जीवन में प्रकट हो, तब वह दूसरे जीवों के साथ अनेक प्रकार के दुःख, क्लेश आदि में जुड़ा हुआ हो, फिर भी स्पर्श नहीं होता है ।

स्वच्छ जीवन की भूमिका

गीतामाता ने भी कहा है :-

'न माम् कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।' (४-१४) वैज्ञानिक प्रयोग करके बताते हैं वैसे शास्त्रकारों ने और संत-महात्माओं ने अनुभव से दिया है । कर्म करने पर भी ऐसे मनुष्य उसमें लिप्त नहीं होते हैं । उनके कर्म जिस प्रकार से होते हैं, उसमें जीवप्रकार की स्थिति नहीं होती । उन जैसों को स्पृहा नहीं होती । निरहंकारता, निर्ममत्व, निर्लेपता में रहने के लिए शांति की खास जरूरत है । सब जीवों के साथ हम प्रेमभाव से सद्भाव से व्यवहार करें । नम्रता है, फिर भी बुद्धिमान मनुष्यों में इतनी अधिक समझदारी होती है कि आग्रहपूर्वक करते हैं कि यही सच है । ऐसे आग्रह छोड़ने चाहिए । संत अहंकाररहित-ममत्वरहित होने को कहते हैं । यह भक्तिपूर्वक करना है । इसलिए सब के साथ अनासक्ति से अनाग्रह की रीति से सोच कर काम करना रखें तो नामस्मरण में उठाव आता है । जिस तरह कपड़े को रंगना हो (**इस** शरीर का धंधा रंगने का था) तब उसे साफ करना पड़ता है । कभी धोबी को भी देना पड़ता है । रंग का उठाव लाने के लिए उसे ठीक से स्वच्छ करना पड़ता है । नामस्मरण में उठाव लाने के लिए जीवन को उतना ही स्वच्छ बनाने की जरूरत है । प्रत्यक्ष जीवन में सब गुणों का अनुभव कर सकें और उसका भरोसा हो जाय तभी समझ में आएगा । हम सब वैसा नहीं कर सकते । सब करते नहीं । भगवान हैं और सब उसके अंग हैं वैसा कहते हैं । वह सब को धुमाता है, वैसे घूमते हैं ।

याहोम करके

गीतामाता ने भी वैसा कहा :

'भ्रामयन् सर्व भूतानि ।' (१८-६१)

अभी की द्वंद्वात्मक, गुणात्मक प्रवृत्ति से दूर हो जाँय, तो अनंत प्रकार का आनंद प्रकट होगा, कि जहाँ आनंद की सीमा नहीं है। उस उत्साह की किसी के साथ तुलना नहीं कर सकते । इसलिए उसे अवर्णनीय कहा है । वह न हो सके ऐसा नहीं है, वह सब हो सके ऐसा है । ऐसा सबूत के साथ का प्रयोग है । नहीं होने का कोई कारण नहीं, परंतु वैसी तमन्ना प्रकट नहीं होती। उसके लिए ज्वालामुखी के समान दहकती तमन्ना, गुरुमहाराज के आशीर्वाद के कारण से या ईश्वर की कृपा से प्रकट हो जाय तो अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा । गीता में भी प्रमाण दिये हैं, 'मेरा चिंतवन अनन्य भाव से करे, सातत्य प्रकट हो, उसका योगक्षेम मैं सब रीति से करता हूँ ।' परंतु उन्होंने जो पहली बात कही है, उसका कोई पालन करता नहीं। दुःख आये तब ऐसा कहते हैं सही कि भगवान की प्रसादी है ? परंतु हकीकत की वात है, अनुभव की बात है। प्रयोग की दृष्टि से सच है कि ऐसा अनन्यपन प्रकट हो, तब सतत शुरू करे-याहोम करते पड़ें तब योगक्षेम ईश्वर ही चलाते हैं । परंतु ऐसा सब तो करते नहीं ।

मौनएकांत का अनुभव

मुझे तो गुरुमहाराज ने आज्ञा की है, इसलिए यह करता हूँ। भला बुरा सोचता नहीं । वैसे तो मैं सेवा के क्षेत्र में था । मुझे लगा कि उसमें काम नहीं हो सकेगा । हरा रंग दिखाई दे, भजन आदि गाये जा रहे हों, अच्छी बातें हो रही हों, तब भावावेश हो जाता । तो मैंने मेरी माँ के पास आशीर्वाद माँगे, तब कहने लगी कि 'चिड़ियाँ को दाने खिलाने जितनी तो तेरी शक्ति नहीं ।' गुरुमहाराज ने आज्ञा की है कि 'तुझे किसी को बोध नहीं देना, प्रवचन नहीं करना, मौन में उठने-बैठने के समय दो शब्द बोलना ।' इसलिए दो बात मैं कहता हूँ बाकी, मैं बोलता नहीं हूँ। जीवन में समस्या,

उलझन आदि तो आयेगी । ऐसे समय भाग नहीं सकते । सभी को चाहिए सब, किन्तु उसके लिए मार्ग कोई लेता नहीं । कोई कहता है तो उसे कहता हूँ कि मौनमंदिर में बंद हो जाओगे तो शांति मिलेगी। अंदर बैठनेवाले से नाम लिया जाता है यह हकीकत है। मेरा छोटा भाई मेरा विरोध करता था । यह गप है ऐसा कहता । वह मेरे साथ रहता भी नहीं था । हम भाई-भाई एक माँ के बेटे होते हुए भी अलग-अलग प्रवृत्ति के कारण साथ नहीं रहे । इस समय अफ्रीका से आया । तीन-चार महीने मेरे साथ रहा । कभी वह बैठेगा वैसी कल्पना भी नहीं हो सकती । उसे इच्छा हुई उसने कहा, 'मैं बैठूं, परंतु करूंगा क्या ? बालशिक्षा के गीत लिखूं, लेख लिखूं.' मैंने तो सब के लिए 'हाँ' कही । तुझे जो करना हो वह कर, परंतु अंदर रह तो सही, और जिस दिन २१ दिन बैठने का तय किया, उस दिन मुझे जो आनंद हुआ वैसा आज भाईने कृपा करने से हुआ । सतत नामस्मरण हुआ । १७-१८ घंटे बोला गया था । गांधी आश्रम के एक बहन से २२ घंटे हुआ था । सौराष्ट्र का ग्वाला भी २२ घंटे बोलते थे फिर भी नींद की परेशानी नहीं होती थी । स्फूर्ति भी कम नहीं हुई थी । दो घंटे भी पूरी नींद नहीं तब भी बीच-बीच में बोलते भी शरीर को नुकसान नहीं हुआ। कोई नामस्मरण लेने के लिए मना करे उसे दूसरी प्रवृत्ति कि लिए रज़ा देता हूँ । परंतु जब अंदर जाकर अलग होना बनता है, तब सोचे बिना वह नहीं रह सकेगा। अलग होने से ही एकाग्रता आती है और शांति प्रगट होती है, यह अनुभव की हकीकत है । इसे मानने न मानने का सवाल नहीं । यह अलग प्रकार का अनुभव है । लेने जैसा है और समझ सके वैसा है ।

दिनांक : २३-८-१९५९

३. प्रेमपूर्वक त्याग

मरजिया टेक

अभी जो प्रार्थना में 'हरि को भजते' गाया वह छोटा है, परंतु १९४१ से गुरुमहाराज की आज्ञा से मौन देना शुरू किया, तब से यह भजन गाना चालू रखा है । किसी कारण से प्रार्थना में वह नहीं गाया जाता तो भी किसी न किसी रूप से सुनने को मिल जाता है । कल माताजी पधारे थे । उनके भजनों का कार्यक्रम था, इसलिए यह भजन गाना छोड़ दिया, किन्तु प्रार्थना पूरी हुई कि तुरंत रेडियो में पहला वही भजन 'हरि को भजते' आया । साबरमती आश्रम में भी ऐसा बनता । नडियाद में भी एक-दो बार ऐसी घटनाएँ हुई थीं ।

मनुष्य को जीवन में निश्चयात्मक रूप से टेक रखनी चाहिए । 'पहाड़ डगमगा सकता है परंतु टेक नहीं डगमगानी चाहिए ।' यदि ऐसा दृढ़ अभिगम रखा जाय तो वह सार्थक बनता है । हम बुद्धिमान मनुष्य हैं । इस बात का स्वीकार न करें, परंतु भूकंप होता है, तब पर्वत भी डगमगाता है परंतु जिसने मरजिया टेक लिया हो, वह मनुष्य डगमगाता नहीं है, हटता नहीं है । टेक तो एक प्रतीक है, प्रतिघोष है । जीवन में उसके लिए खमीर होना चाहिए । कुछ भी करने के लिए खमीर की जरूरत है । फिर वह सांसारिक बाबतें हों या आध्यात्मिक बाबतें हों, उसके बिना किसी भी मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकते । टेक पालने के लिए तो शौर्य, त्याग, बलिदान आदि की खास जरूरत होती है । बिना टेक के आगे नहीं बढ़ सकते । कोई कहेगा कि टेक और नामस्मरण का क्या संबंध ? एकाग्रता की तो हर जगह जरूरत पड़ती है । हम व्यापार करते हों, वहाँ भी हमारी प्रकृति के गुणधर्म प्रवेश करते हैं । हमारे में

रागद्वेष, मोह आदि हो तो वे वहाँ प्रवेश करते हैं । **प्रार्थना, नामस्मरण की भावना हो तो द्वंद्व की भूमिका नहीं रहेगी । द्वंद्व की भूमिका का नाश करने का प्रयोग वह नामस्मरण की भावना ।**

धुन का परिणाम

नामस्मरण से धुन, एकाग्रता, शांति, प्रसन्नता आदि गुण प्रकट होते हैं । वह करते-करते आगे जाते ऐसा लगता है कि यह अच्छा है । नामस्मरण करते-करते हिस्टीरिया की वह बीमारी मुझे मिट गई, तब मुझे भी लगा कि इसमें कुछ है । नामस्मरण से विचारों की मात्रा (intensity) इतनी ज्यादा नहीं रहती । विचारों की मात्रा वह भी द्वंद्वात्मक भूमिका का प्रकार है । नामस्मरण की धुन प्रगट होने से द्वंद्वात्मक भूमिका की पकड़ जमती नहीं । (समझ सकें ऐसी Psychological हकीकत है कि मनुष्य क्रोध करता है, तब सब भूल जाता है । उस समय वह अविचारी कर्म भी कर डालता है । देश का विभाजन हुआ उस समय सामान्य मनुष्यों ने भी न करने के काम किये हैं, यह हकीकत है । उस समय क्रोध medium (माध्यम) बनता है । उसी तरह नामस्मरण की धुन medium बने तो समय बढ़ते हुए द्वंद्व की भूमिका नहीं रहती । उसमें से टेक प्रकट हो और उससे धैर्य, बल, हिम्मत विकसित होती जाती है, ऐसा गीतामाता ने कहा है और संत-भक्तों भी कह गये हैं । 'हरि का मार्ग' उस पद में प्रेमलदास ने कहा है, 'भक्तों के दुःख दूर करेंगे रे ।' सामान्य मनुष्य यहाँ समझ नहीं सकते । वे सोचते हैं कि गुणातीत, द्वंद्वातीत को दुःख कौन से ? भक्त भी व्यावहारिक

जीवन में लकड़ी या पत्थर नहीं होता । उसे भी भावनाएं, हर्ष, शोक आदि होते हैं । परतु वह उनके द्वारा दब नहीं जाता ।

हेतु के ज्ञान-भान के साथ नामस्मरण

ऐसे भक्तों के जीवन में अनेक प्रकार के निमित्त प्रगट होते हैं। वे आसपास के परेशान लोगों को देखकर, उनके दु:खों को देखकर, उन्हें भगवान का स्मरण करने को कहते हैं । और इस तरह रचनात्मक प्रवृत्ति की तरफ मुड़ने को कहते हैं । जीवन में सद्भाव, सुमेल, सद्वृत्ति इन सब की अत्यंत जरूरत है । एकदूसरे के लिए घिसना पड़ता है फिर भी वह बलपूर्वक नहीं । समाज की रचना ही ऐसी है कि उसमें किसी का चलता नहीं । यदि प्रेम से घिसाना न हो तो विकृति होती है । इसलिए जो प्रेम से करना होता है, वह कुछ अलग प्रवृत्ति नहीं है । यदि यह सब प्रेम से करे तो उसका विकास होगा, सद्गुण खिलेंगे । उसके सिवा भगवद् स्मरण में उठाव नहीं आएगा । इसके साथ अनासक्त, निष्काम, निर्ममत्व, निरहंकारत्व आदि गुणों को भी प्रगट करने की आवश्यकता है। नामस्मरण अकेला आधा घंटा या पाँच माला करने से काम नहीं चलेगा, वह लगातार चलना चाहिए । इसमें भावना से बरतेंगे तो शांति प्राप्त होगी । यह सब से बड़ा लाभ है । और भगवान का स्मरण होगा तो उत्तम रीति से हो सकेगा । चित्त, बुद्धि, मन, प्राण, अहंकार आदि द्वंद्वों से जुड़े हुए होते हैं । फिर, दूसरे अनेक प्रकार के भय हैं । उन सब से मुक्त होने के हेतु के ज्ञान के साथ, भान के साथ नामस्मरण करने से जल्दी उठाव होता है । स्मरण वह बचने का उपाय है । जिस तरह समुद्र में डूबते व्यक्ति को यदि बड़ी लकड़ी हाथ आ जाय तो वह जीवित रह सकता है । **इस तरह नामस्मरण इन डूबने के भयस्थानों में तैरते रहने के लिए**

बड़ा आधार है । यह साधना स्त्री-पुरुष सब कर सकते हैं । भक्तों ने देखा कि यदि मनुष्य यह कर सकेगा तो वह सुखी होगा ।

प्रयोग तो करो

सेवा में जीवन बिताया है । पढ़े लिखे हैं, ऐसे एक भाई ने लिखा था **कि निरासक्त, निरहंकार, निर्ममत्व इत्यादि कैसे हो सकते हैं ? उसका एकमात्र उपाय नामस्मरण है और उसे अखंड बना दो तो वैसा हो सकता है** वैसा पोस्टकार्ड लिखा था । नामस्मरण जोर से बोलने से सब घटता है, यह कहना है । अनुभव की बातें हैं । स्वयं द्वारा किये बिना अनुभव नहीं होगा । विज्ञानमें H_2O यानी पानी-ऐसा प्रत्यक्ष दिखा सकते हैं, ऐसा इसमें नहीं है । यह तो स्वयं के अनुभव के सिवा नहीं जाना जा सकता । बुद्धि, तर्क इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते । नामस्मरण से अहंकार, आसक्ति, ममत्व आदि का जरूर नाश होता है । कोई कहे कि 'impossible' है । आप 'rational' नहीं हैं । बुद्धि के एक तुक्के से बात उड़ा देते हो । उसे मैं कहता हूँ कि 'प्रयोग करके तो देखो, प्रामाणिकता से और भक्तिपूर्वक (sincerely, honestly and devotionally) । फिर देखो कि संभव है या नहीं ।' जब तक ऐसा नहीं करे तब तक impossible कहे वह योग्य नहीं है । बुद्धिमान ऐसा कहते हैं कि हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता तब वह कुछ समझ में आये ऐसा है । महात्मा गांधीजी छोटे थे तब डरपोक थे । वे भगवान का नाम लेते और उस श्रद्धा से डर नहीं लगता था । मैं तो कहता हूँ कि हो या न हो तो भी स्मरण तो करो । समझ के करोगे तो उत्तम होगा । करो तो इस जन्म में भी हो सकता, परंतु सचमुच कमी तो यह है कि उतना उत्साह, इतना जोश, इतनी तमन्ना नहीं होती । उसमें तामस, आलस नहीं

चलेगा । यदि नामस्मरण निराग्रहपूर्वक अजपाजप तक ले जा सके तो सब संभव है । १२-१४-१५ घंटे तक होने से सोहबत का असर होता है यह बात सत्य है, परंतु अजपाजप तक जाय तभी वह वस्तु संभव होगी ।

हिमालय में एक साधु की मुलाकात

चेतन में निष्ठा प्राप्त किये हुए आत्मा हो उन्हें भी जीनव में संघर्ष होता है । वह समाज से दूर नहीं है । गुफा में बैठकर जीवन बितानेवाली आत्मा तो क्वचित् ही होती हैं । वह भी समाज से दूर होती ही नहीं । मैं इसी हेतु के लिए अकेला निकला था १९३३ के अंत में । हिमालय में मुझे एक महात्मा मिले । वे बर्फ में रहते । पास में सिर्फ एक छोटा हथियार रखा था कि जिससे बर्फ को खोद कर हवा आने का रास्ता हो सके, इस मार्ग में तो पिशाब-शौचत्याग पर भी काबू आ सकता है । नींद पर भी स्वामित्व लाया जा सकता है । ऐसे इस महात्मा के दर्शन हुए थे । उनको मैंने पूछा, 'आप समाज से दूर रहकर क्या कर सकते हो ?' उन्होंने कहा, 'समाज से चाहे दूर लगता हूँ, परंतु ब्रह्मांड के साथ जुड़ा हुआ हूँ । उससे अलग नहीं हूँ ।' तत्त्वज्ञान की दृष्टि से उसमें (fallacy) दोष नहीं है । उनको मैंने पूछा, 'यहाँ रहकर व्यक्ति के साथ का आपका संबंध कैसे ?' उन्होंने कहा, 'शरीर परंपरा का बना हुआ है या नहीं ? जीवन की अनंतता है या नहीं ? फलफूल आदि होते है या नहीं ? कोई भी वस्तु बिना परिवर्तन की है ? फिर भी अनंतता कायम है या नहीं ? उसी ही तरह शृंखला चला ही करती होती है । मनुष्य जीवन भी अटका नहीं रहता । वह यहाँ अटकता नहीं । वह आगे भी रहेगा और पीछे भी था । तुम्हारा छोटा दिमाग व्यवहार में नहीं चलेगा । शंका मिटे तो ही बड़ी बात हो सकती है । परंतु बुद्धि

से यह बात नहीं समझोगे-अनुभव बिना नहीं होगा ।' मैंने उनसे बहुत प्रार्थना की कि समझाइये । उन्होंने कहा, 'सिर्फ पृथ्वी के साथ संबंध नहीं है । संपूर्ण ब्रह्मांड के साथ संबंध है। यहाँ बैठे-बैठे निमित्त प्रकट होता है ।' मैंने कहा, 'यह स्वीकार करना मुश्किल है, समझ में नहीं आया । मुझे इसमें समझ नहीं पड़ी ।' उन्होंने कहा, 'पृथ्वी किसी के साथ जुड़ी हुई है, वह हम मानते हैं । वह सूर्यमाला के साथ जुड़ी हुई है-दूसरे के साथ-तीसरे के साथ जुड़ी हुई है वह बुद्धि किस तरह मानती है ?' मैंने कहा, 'उसकी समझ तो नहीं है, परंतु ऐसा सीखा हुआ है, इससे वह दिल में उतर गया है ।' मैंने पूछा, 'आप यहाँ रहते हुए किस तरह जुड़े हुए हो ?' उन्होंने कहा, 'जिस तरह हमें ऐसा नहीं लगता कि पृथ्वी जुड़ी हुई है, फिर भी हकीकत में वह बात सच है । उसी तरह अनुभव से मानें तो वह सूक्ष्म में प्रकट होता है । यहाँ बैठे-बैठे जैसा जिसका निमित्त प्रगट होता है, वे सब यहाँ हाजिर होते हैं । सिर्फ मनुष्य ही नहीं, देवदेवियाँ भी । सृष्टि में १४ प्रकार की योनियाँ हैं, उनमें देवदेवी की भी एक योनि है, प्रेतयोनि भी है। मेरा उन सब के साथ संबंध है । उन लोगों के साथ निमित्त प्रगटे तो भी क्या और न प्रगटे तो भी क्या ? शरीर है, वहाँ तक यह चलता ही रहेगा। मेरे पास कुछ पल के लिए आने से भी उसका उद्धार है । मेरे साथ होने से तादात्म्य विकसता है । बुद्धि से शंका दूर हो जाएगी उसका भरोसा नहीं है । कोई व्यक्ति सब को लुच्चा लगता हो, मुझे उसका अच्छा अनुभव हो । हमें अनुभव से ही विश्वास हो सकता है । मनुष्य को अपने अनुभव पर दृढ़ रहना चाहिए । बिना अनुभव के शंका मिटेगी नहीं । बुद्धि से तो जाएगी ही नहीं ।' वे यह हकीकत के रूप में कहते थे और मैं बुद्धिहीन की तरह समझ रहा

था । उनको मैं ने पूछा, 'आपके समान अनेक महात्मा इस देश में हैं, फिर भी उद्धार क्यों नहीं होता ?' उन्होंने आगे कहा, 'इससे बीज बोया जाता है । वह तुरंत फल नहीं देता, परंतु जब उस संस्कार का उदय होगा, तब वह जागता है । तू भी पहले कहाँ मानता था ? तू मानता था कि ऐसे महात्मा संसार में बोझरूप हैं । तुझे तेरे नाम के साथ बुलाया फिर भी तू नहीं जा सकता था । तुझे पहचानते नहीं थे । पहचान नहीं थी, फिर भी तुम्हें बुलाया था ।'

संत का प्रेम

जीवन में सच्ची रीति से मेल मिलाप से, त्याग से व्यवहार करना चाहिए । जिस के लिए सहन करना हो उसे प्रेम से करो तो वह दिल से मिश्रित होगा । यह भी तप है । इससे शक्ति और गुण दोनों प्रकट होते हैं । भक्तों को अनेक जीवात्माओं का संपर्क होता है । उनकी बिना क्रम की विचारधारा तरंगों के निमित्त कारण से जान पड़ती है । परिचय हुए बिना उस महात्मा को पहचान नहीं सकते । हमें संबंध हो और बैसा संबंधी योग्य रीति से व्यवहार न करे तो हमें दुःख होगा । बाबुभाई मेरा मित्र है । वह योग्य रीति से व्यवहार न करे तो मुझे दुःख होगा । भक्तों में तो प्रेम होता है और वह इतना अधिक होता है कि लोग उन्हें स्वार्थी कहते हैं । मुझे भी अनेक कहते '**मोटा** तो बहुत स्वार्थी हैं ।' मेरे मुँह पर कहनेवाले हैं और मैंने अपने कानों से सुना है । परंतु उन लोगों में प्रेम होता है । गेरसप्पा का प्रपात बहता है वह भी इन लोगों के प्रेम के प्रपात के आगे मामूली ऐसा वह जबरदस्त प्रपात है, परंतु हम लोग हमारी वैसी भूमिका नहीं होने से स्वार्थी मानते हैं । वह प्रवृत्ति से अलग नहीं हो सकता, उसके कारण वह प्रत्येक के साथ संपर्क में आता है ।

प्रेम द्वारा सेवा

पुरुषों के साथ स्त्रिओं के साथ भी, बहनें आती हैं, तब पुरुष चिल्लाते हैं । मैं उनको कहता हूँ कि आपने कुछ ठेका लिख दिया है ? हमारे संबंध में आनेवाले के साथ कोई लिंगभेद नहीं है । निमित्त का प्रकट होना वह तो तत्त्वज्ञान की बात है । सत्य, सत्य नहीं मिट जाता । महात्मा गांधीजी ने भी कहा है । किशोरलालभाई के साथ बातचीत हुई थी । जिस तरह कृष्ण और अर्जुन का संवाद हुआ था । गांधीजी ने २१ दिन के उपवास किये उस विषय की प्रेरणा उनको हुई थी । उन्होंने आवाज सुनी थी । उन्होंने कहा, 'मैंने किसी को देखा नहीं है । कोई रूप देखा नहीं है । मुझे आवाज सुनाई देती थी ।' किशोरलालभाई ने विरोध किया, 'आप लोगों को वहम में डालते हो ।' गांधीजी ने कहा, 'लोगों को चाहे वैसा लगे, परंतु मेरे लिए वह सत्य है ।' मेरे साथ संबंध रखनेवाले को मैं कहता हूँ : आना हो तो आना, परंतु बहनें तो यहाँ आएँगी ही । उनको मना करना यह असंभव बात है । कई कहते हैं कि 'भगतड़ी आई ।' मनुष्य अपने शब्द से पहचाना जाता है । हम तो कहते हैं कि हम जैसे हैं वैसे हैं । हमारी विनती है कि प्रेम करो । मैं प्रेम करने का प्रयत्न करता हूँ ऐसा नहीं कहूँगा, परंतु प्रेम करने का मेरा सहज स्वभाव है । हम दिल से जुड़े हुए हैं, इसलिए जीवन में भी उसी प्रकार व्यवहार करते हैं । **हमारे आचरण से और उस प्रकार की भावना से जीवन ऊपर उठे वह भी बड़ी से बड़ी सेवा है । मनुष्य महानुभूति से, प्रेम से आचरण करे तो जागृति प्रकट होती है, स्थूल सेवा की अपेक्षा जीवन ऊपर उठाने की जो प्रक्रिया प्रकट होती है, वह भी बड़ी से बड़ी सेवा है ।**

भावना से उत्क्रान्ति

मैंने कालिज छोड़ी तब मैं फर्स्ट क्लास विद्यार्थी था । मैंने और पाडुंरंग (पू. रंगअवधूत महाराज) दोनों ने एक साथ कालिज छोड़ी थी । उस समय प्रिन्सिपाल मसाणी साहब ने बहुत समझाया था । रंगअवधूत महाराज का तो संस्कृत इतना अच्छा था कि प्रोफेसर साहब से भी अच्छा अभ्यास किया था । साधना के दरमियान मेरे गुरुमहाराज ने कहा था कि भावना से लोगों के जीवन को ऊपर उठाना वह भी बड़ी से बड़ी सेवा है । समाज के साथ तुम्हें उसी तरह आचरण करना है । इस बात का पक्का विश्वास होने के बाद फिर कभी भी कोंग्रेस या हरिजन सेवक संघ का सदस्य हुआ नहीं । मैं जेल में भी गया हूँ । मैंने लाठीमार भी झेला है । मैंने जो भी किया है, वह हिमालय की गुफा में नहीं किया । इस बात के प्रत्यक्ष साक्षी–मेरे मित्र–साथ में काम करने वाले-आज भी हाजिर हैं । आया हुआ कर्म सदैव किया है, भोगा है । कभी भी उपेक्षा नहीं की । जब मुझे यह (मौनएकांत का) कर्म करने का हुआ, तब से यह कहता हूँ । **मैं तो इसे Soundproof (आवाज रहित) बनाना चाहता हूँ । भगवान की कृपा होगी और वैसी सरलता होगी तब वैसा करूँगा ।**

सर्व समर्पण

मनु सूबेदार ने लोटस ट्रस्ट में से मेरे हरिजन सेवा के काम से खुश होकर मुझे सौ रुपये महीना देना तय किया था । उसके अनुसार आठ साल तक मुझे रकम मिली, परंतु उसमें से एक पैसा भी मैंने खर्च नहीं किया । पूरी रकम हरिजन सेवक संघ में जमा कराई है । मुझे कई मित्र निजी रकम भी देते हैं । उसे अभी पिछड़ी ज्ञाति की बहन का निमित्त प्रगट हुआ तो सब जगह से ऐसी रकम

इकट्ठी करके रु. ५०००/- की रकम हरिजन सेवक संघ में दी है। पूरा जीवन देशसेवा में बिताया है। पैसों का कभी भी मोह नहीं रखा। एक बार आश्रम के लिए लाख रुपये मिले थे। वह सब जिस जिसने दिये थे, उनको उनको वापस कर दिये थे। हेमंतकुमार नीलकंठ और अन्य सहयोगी इस बात के साक्षी हैं। इससे अब सभी मित्रों से कहता हूँ कि साथ में जुड़ना हुआ हो तो प्रेम से मदद करो। आश्रम चलाने के लिए साधन नहीं हैं। चार आदमिओं को तो मिलो। यों तो मित्र चलाते हैं। मेरा हेतु (bonifides) स्पष्ट है। मेरी पिछली जिंदगी देखो। नडियाद में भक्ति की है, धुनपूर्वक की है। हरिवदन ठाकोर, परीक्षितलाल मजमुदार, हेमंतकुमार नीलकंठ आदि को पूछो।

आश्रम का काम–भगवान का काम

मेरी तो साफ स्लेट है। और यह उत्तम प्रकार का कर्म लेकर बैठा हूँ, तो सब से विनती है कि मैं निश्चित हो जाऊँ उस तरह व्यवस्था खड़ी करने में मदद करो। भगवान तो चलाएगा ही। नरोडा में एक सामान्य किराने की दुकान का मालिक चलाता है। मैं मना करता हूँ, परंतु उसे अनंत विश्वास है और वह अकेला चलाता है। तो आपको भी विनती है। आप घर पर खाते हो तो चुटकी चुटकी खाना यहाँ भी देना। आश्रम में घी, दूध तो खाते नहीं। यह काम भगवान का है, ऐसा मानना। घी सिर्फ आटे में मोयन में डालने जितना खरचते हैं। तेल तो खाना पड़ता है। गुड़, घी, तेल, चीनी, मरी-मसाले आदि चाहिए। मैं कहाँ सब को पहचानने जा सकूं ? मैं तो सब को कहता हूँ कि आपके पास दो पैसे हैं, आप जितनी मदद करोगे इतना निकट का संबंध होगा। दूसरों के साथ नहीं हो ऐसा नहीं। सुरत के मित्रों को कहता हूँ

कि प्रयोग करके देखो । आश्रम का काम करोगे तो व्यर्थ नहीं जायगा । मेरे मित्र नंदलाल के मामा एल.एल.बी. में फर्स्ट क्लास में उत्तीर्ण हुए थे । उनको कुंभकोणम् का आश्रम निर्माण करते समय आश्रम के काम में लेना पड़ा था । उनको डगमग थी कि व्यापार का क्या होगा ? मैंने उनको लिखकर दिया था कि आपकी बिक्री में फर्क नहीं पड़ेगा और उन पाँच महीनों की बिक्री औसत बिक्री से कम नहीं हुई थी । उसके बाद उनके पुत्र हसमुखभाई ने तीन महीने में पूरा कराया । वे इतने होशियार थे कि ग्राहक उनके सिवा माल नहीं लेता था । हीरा के बारे में कैसा होता है । फिर भी उनकी गैरहाजिरी में भी पूरी बिक्री हुई थी । यह तो संयोगवश (concident) है । मैं इससे आपको भ्रम में नहीं रखना चाहता । परंतु आप आश्रम के लिए काम करेंगे तो आपका काम बाकी नहीं रहेगा । यहाँ तेल की मिलें हैं तो मिलवालों के पास जाइए, आपका काम नहीं बिगड़ेगा ।

प्रेम के साथ मितव्ययिता

नडियाद में कुबेरदासभाई अकेले संभाल रखते । सप्ताह में दो बार आते । स्वयं भंडार में देख जाते और बाकी की चीजें पहुँचा देते । दुकान में बहुत कम ध्यान दे सकते थे, फिर भी उनका व्यापार चला करता था । मैं आपको यह ललचाने के लिए नहीं कहता हूँ, परंतु इस काम में मदद नहीं करोगे तो नहीं चलेगा । भगवान ने देर करवायी वह भी अच्छा हुआ । इतनी पहचान हुई है । यदि पहले शुरू होता तो आश्रम कैसे चलाना वह भी प्रश्न रहता । सामान्य रूप से मैं किसी से कहता नहीं । मौन के प्रवचन के समय ही बोलता हूँ । इस समय गुरुपूर्णिमा के दिन साबरमती आश्रम में रहा था । सभी आश्रमों में मालपूड़े और दूधपाक की जियाफत होती,

बचा हुआ भिखारियों को वाँटा, परंतु इन लड़कियों को (आश्रम की) खिलाने को कोई तैयार नहीं। मैंने स्वयं ८० रुपये खर्च करके दूधपाक खिलाया है। मालपूड़ा खिलाने की मेरी बिसात नहीं। कोई दे परंतु मन से भारी लगे, वह भी नहीं चलेगा। हम तो संपूर्ण मितव्ययिता करेंगे। हम कुछ भी व्यर्थ जाने नहीं देते। वैकुंठभाई के वहाँ से भात आया था, वह चार समय तक खाया था। खाखरा-चपाटी बच जय तो बचने देना। मेरी मा ने वस्तु का किस प्रकार उपयोग करना वह बराबर सिखाया है। मितव्ययिता से कैसे जीना वह मैं महात्मा गांधी के पास सीखा हूँ। पेन्सिल खो जाती तो कितनी मेहनत करते वह मैंने देखा है। ऐसे महात्मा मिले नहीं हैं।

'मोटा'

जगत हकीकत की दृष्टि से प्रसिद्धि को पहचानता है। मेरी ऐसी कोई प्रसिद्धि नहीं है। मेरे गुरुमहाराज ने मुझे बड़प्पन दिखाने के लिए मना किया है। इससे आपको शुभ निष्ठा से, शुभ भावना से कहता हूँ कि भगवान ने दो पैसे दिये हैं तो मदद नहीं करोगे तो कैसे चलेगा। मुझे ज्यादा तप करना पड़ेगा। मेरी बासठ साल की उम्र तो हो गई है। **उम्र शरीर को है, अंदरवाले को नहीं।** यहाँ इतनी मुश्किल हुई फिर भी भीखुभाई और झीणाभाई टिक रहे हैं। मेरी निष्ठा-मेरा जीवन साफ है। 'घीसा औषध और मूंडा साधु' की तरह मैं नहीं आया हूँ। मेरे साथ संपर्क वाले कई व्यक्ति देश में हैं। उनको पूछकर देखो। आप रहकर भी देख सकते हो। मुझे गालियाँ देने वाले, अन्याय करने वालों के साथ भी मैंने उतना ही प्रेम रखा है। वे कबूल करते हैं। गुरुमहाराज ने मुझे बड़प्पन दिखाने की, मना की है। मुझे 'मोटाभाई' कहने लगे। मैंने मना किया। आश्रम में परीक्षितलालभाई को सब 'मोटाभाई' कहते, इससे

मित्रों ने 'मोटा' नाम रखा । आखिर शरीर को किसी नाम की तो जरूरत होती है न ? मैंने कहा था कि जितना छोटा होगा वह मुझे पसंद आएगा । इसलिए 'मोटा' इस नाम में कोई बड़प्पन नहीं है । मैंने कभी-भी बड़प्पन दिखाया नहीं है । भगवान जानते हैं और मैं जानता हूँ । कभी भी जानने नहीं दिया है । भक्ति प्रगट होने सिवा जान भी नहीं सकते । महात्मा गांधी उपवास करते, तब मालवीयजी भागवत पढ़ते, एन्ड्रुज साहब पढ़ते । भक्ति प्रगट हुए बिना हृदय को नहीं जान सकते । चेतन हृदय द्वारा मिलता है । हृदय वह कैसा ? निरहंकारता, निष्कामता, निर्ममत्व इत्यादि गुणों से जागृतिपूर्वक प्रकट हुआ हो और जैसे-जैसे आगे बढ़ते जाय वैसे धीरे-धीरे गाढ़ता प्रगट हो और उसका उत्कटता में रूपांतर हो । चेतन का अनुभव रूप में नहीं होता, गुणधर्म प्रगट होते हैं । जैसे-जैसे सद्भावना, सुमेल, शांति, प्रगट होती है और रागद्वेष फीके होते हैं वैसे-वैसे लोभ, मोह, आसक्ति कम होती हैं । उसमें सब का कल्याण है ।

दिनांक : ७-९-१९५९

॥ हरिः ॐ ॥

४. उत्तम सेवा

मेरे अनेक मित्र—विशेष करके बुद्धिवाले और जिनकी बुद्धि विकसित हुई है, और जिसका उनको अभिमान है तथा जिन्होंने रचनात्मक कार्य में भाग लिया था, वे मुझे कहते, 'भगत, यह क्या अंधेर है ? शब्द से कभी मन, चित्त, अहंकार आदि जा सकेंगे क्या ?'

मैं उनको कहता, 'पहले भक्त लोग कह गये हैं और महात्मा गांधीजी भी कहते थे कि भगवान के स्मरण से अहंकार, अभिमान आदि का नाश कर सकते हैं और नम्रता आदि गुण विकसित कर सकते हैं, परंतु ऐसा करोड़ों में शायद ही कोई होता है।' भगवान पर श्रद्धा के कारण जगत में खमीर प्रगट होता है। मनुष्य को दुःख में टिके रहने के लिए साधन चाहिए। १९२७ में भयंकर बाढ़ आई तब गांधीजी सरदार से कहते, 'गुजरात के किसानों में खमीर है। उन्हें तुम भिखारी मत बनाना।' जगत में ऐसी कोई शक्ति है। लोग चाहे उसे कोई भी नाम दें। उसके कारण ही लोगों में श्रद्धा रहती है और ऐसी श्रद्धा के कारण जगत के लोग टिक सकते हैं।

भगावन के नाम पीछे भावना

मेरे मित्र कहते हैं, 'शब्द से सब वृत्तियाँ सुधर सकती हैं, ऐसा बुद्धि से स्वीकार नहीं किया जा सकता। शब्द का असर भले हो।' मैं उनसे कहता कि शब्द फैलता है या नहीं ? यह तो तुम्हारे मानने में न आये ऐसा नहीं है। अमेरिका में रेडियो पर ध्वनि प्रसारित करने में आये तो सिमला में और यहाँ भी एक साथ सुनाई देती है। उस समय ध्वनि पर बिजली का भारी प्रवाह फेंकने में आता है, जिससे ध्वनि ईथर में प्रसारित हो जाती है और उसी पल पूरी दुनिया के वातावरण में प्रसारित हो जाती है। फैल जाती है। उस

क्रिया को बिलकुल देर नहीं लगती, क्योंकि प्रवाह उसके पीछे होता है। उसी तरह शब्द के पीछे भी युग-युग से चली आ रही भावना है। उसके पीछे परंपरा है। भगवान के नाम के पीछे भावना रूपी प्रवाह है।' इस तरह समझाता तब वे लोग यह बात कबूल करते। रेडियो की बात वैज्ञानिक रीति से कबूल करने में आती है, उसीप्रकार इसे स्वीकार करनी पड़ती है। भगवान के नाम के शब्द में भी भावना है। उसका जितना प्रवाह बड़ा उतना ही वह ज्यादा फैलता है। यदि भावना का प्रवाह कम होगा तो उसका फैलना कम होगा। यदि भावना प्रचंड होगी तो मन, बुद्धि, प्राण, अहंकार इन चारों पर असर करेगा ही, तब उन लोगों को बात कबूल करनी पड़ती है। वे लोग कहते हैं ऐसी समझ हमें कोई देता नहीं था, इससे हम गप मानते थे। मैं सब से कहता हूँ कि प्रयोग करके देखो। परंतु वैसा प्रयोग करनेवाला कोई नहीं है। हम हरिजन सेवक संघ में काम करते थे, तब परीक्षितलालभाई आदि मुझे 'बुद्धू' कहते थे। उन्हें ख्याल नहीं कि ऐसी चमत्कारी बुद्धि होगी। यह (नामस्मरण) जितना ज्यादा करेंगे उतना ज्यादा कर्म अपने आप हुआ करेगा। यदि भगवान में गहरे उतरेंगे तो सतेज होंगे और उसमें उत्कटता आएगी, और ऐसी उत्कटता होगी तब एकाग्रता होगी और एकाग्रता केन्द्रित बन जाय, तब स्थूल कर्म अपने आप उत्तम रीति से होंगे। ऐसे व्यक्तिओं में हमेशा सद्भाव ही होता है।

गांधीजी की प्रार्थना

ऐसे मनुष्य पर सामान्य जीव प्रकार के मनुष्यों को नाखुशी आदि हो तो सही है, परंतु हमारा सद्भाव हो तो उन लोगों की भी ऐसी भावना हो जाएगी। गांधीजी ने भी कहा है कि मेरे से अमुक

कार्य तो ईश्वर की प्रेरणा से होते हैं । वे तो युगपुरुष थे । वे कोई झूठ नहीं बोलते थे ।

मुझे याद है कि लाहोर कॉंग्रेस में गांधीजी के हाथ में सत्याग्रह की कमान सौंपी गई । उस समय एक मास प्रसूतिवेदना का अनुभव किया । वे कुछ बोलते नहीं, परंतु लगातार सोचते रहते कि कैसा कदम भरा जाय कि जिसका समाज स्वीकार कर सके । वे लगातार उसके लिए प्रार्थना किया करते । उन्होंनै पूरा महीना प्रार्थना में ही बिता दिया, तब नमक के सत्याग्रह का ख्याल आया । इस तरह भावना से कर्म उत्तम प्रकार से हो सकते हैं । सिर्फ सोचकर करने से कुछ नहीं होगा । भावना का साधन चाहिए । **वृत्ति को एकाग्र बनाने, द्वंद्वातीत बनाने, गुणातीत करने के लिए सरल साधन वह नामस्मरण ।** योग, ध्यान आदि भी हैं, परंतु वह सब आमजनों से नहीं हो सकते ।

नामस्मरण से भावना वृद्धि

संसारव्यवहार में जैसे व्यापार करने के लिए पूँजी चाहिए । कोई मुनीम बहुत होशियार हो, परंतु पूँजी न हो तो व्यापार नहीं कर सकता । या तो उसे मालदार partner (हिस्सेदार) ढूँढ़ना पड़ेगा। मन भी एकाग्र हो तो ध्यान हो सकेगा । उस मन की एकाग्रता के लिए भी कुछ पूँजी की आवश्यकता सही । हमारे में भावना जीवंत रखने, उसे सर्जनात्मक बनाने, तालीम देने, ऊपर और ऊपर ले जाने के लिए कोई साधन चाहिए । अभी हमारे चित्त में शुद्धि नहीं है । हरएक को अहम् होता है । सेवा में काम करनेवाले को भी उसका अहम् होता है । स्वयं को महत्व मिले, उसके लिए हरएक की वृत्ति होती है । सब के सामने चाहे न बताये परंतु दिल में गहरे-गहरे वैसी आतुरता होती है । उनको भी भगवान के यंत्ररूप

जीने का ख्याल नहीं होता । महात्मा गांधी जी को वैसा ख्याल था। **हम यदि प्रत्येक कर्म भगवान के यंत्ररूप करें तो रागद्वेष आदि जरूर कम होंगे ।** हम व्यक्तिओं के साथ जुड़े होते हैं, इससे हमारा कर्म उनमें भी प्रवेश करेगा । सेवा में भी भावना की जरूरत होती है । भावना को विकसित करने के लिए नामस्मरण का मार्ग उत्तम है, ऐसा संतभक्तों ने देखा ।

नामस्मरण उत्तम साधन

'Word has a mystic power' शब्द में गूढ़ शक्ति रही है। भगवान को प्राप्त करने के लिए तंत्रमार्ग भी निकला है । वेद में से वह भी निकला है । उसकी विधि आदि गुह्य है । तंत्रमार्गों में गूढ़ शब्द बोलने पड़ते हैं, जो हम समझ नहीं सकते फिर भी उस मार्ग में वे बराबर बोलने चाहिए । तंत्रमार्ग में भी दो मार्ग होते हैं, शुक्ल और कृष्ण । कृष्ण मार्ग वह जुगुप्सा पैदा करे ऐसा है । वह उच्च अधिकार पाया हुआ ही कर सकता है । जिस के राग, द्वेष, मोह, क्रोध, लोभ आदि कम हो गये हों, वही कर सकता है । हम शुक्ल कर सकते हैं । परंतु उसमें भी हमारी वृत्तियाँ अच्छी हों तो । इस समय में हम वैसे भी नहीं हैं । तंत्रमार्ग से तुरंत परिणाम आता है, परंतु हमसे हो नहीं सकता । क्योंकि हमारे में concentration of power (शक्ति की एकाग्रता) नहीं है । इससे सब कर सके वह स्मरण करना । परिणाम समान ही आएगा । परंतु हमारे में प्रचंड प्रपात (भावना का) होता नहीं, इससे नहीं होता । फिर भी इसका अनुभव किया जा सकता है । संतभक्तों हो गये, वे सब दीर्घ दृष्टिवाले थे, इससे यह उत्तम मार्ग बताया है ।

भगवान की कृपा

मेरे गुरुमहाराज की कृपा से यह मार्ग मैंने लिया है ।

उन्होंने मौन में बिठाने का मुझे कहा । आप नाम लो । नामस्मरण की भावना में दिन का बड़ा हिस्सा व्यतीत हो, इससे ऐसा करते-करते अभिरुचि होगी । मैंने १९२२ से साधना की शुरूआत की थी । उसके पहले मुझे यह बात पसंद न थी । मुझे गुरु सामने से मिले थे ।

उन्होंने मुझे कहा था कि लोगों को भावना से ऊपर लाना वह भी बहुत बड़ी सेवा है । रचनात्मक कार्य से होनेवाली सेवा से भी बहुत बड़ी है । तब मुझे समझ में नहीं आता था। परंतु अब १५-२० साल से समझ में आ रहा है । संपर्क में आनेवाले जीवों के साथ अच्छी तरह व्यवहार करना वह भी सूक्ष्म सेवा है । यह जब से लगा, तब से हरिजन सेवक संघ के सचिव के पद को छोड़ा, वहाँ तक वह छोड़ा नहीं । मित्र पूछते थे कि शरीर से नहीं हो सकता ? मैंने समझाया, 'मुझे तो अनुभव से हुआ है ।' गुरुमहाराज ने मुझे कहा था तुम्हें उपदेश नहीं देना है । इसमें आकर बैठेंगे तो संस्कार मिलेंगे और जब उस संस्कार का उदय होगा तब वहाँ से आगे बढ़ सकेंगे । प्रति वर्ष बैठे तो 'Battery charge' होगी । इस समय बाढ़ आई । बाबुभाई ने निश्चय किया कि निकलना नहीं । झीणाभाई तो दो-चार बार चाय देते, हो सके उतनी सेवा की । हमारा सेवा का क्षेत्र बहुत छोटा है । मित्र भी वैसा कहते हैं । मैं उनसे कहता हूँ जो करते हैं, वह भगवान की कृपा से उत्तम रीति से करेंगे । और दूसरों को मुझे कहाँ दिखाना है ? दिल से परीक्षण करेंगे । सच्चे दिल का व्यक्ति तो सदैव कर्म का परीक्षण करता रहता है। बाबुभाई ने श्रद्धा रखी कि 'मोटा' जीवित है और उस प्रकार मेरे पर की श्रद्धा की शक्ति से आनंद से रहे । मुझे बह बहुत पसंद आया । झीणाभाई ने जान जोखिम

में डालकर भी उनकी सेवा की। बाढ़ में हमारे पर तो भगवान ने अपार कृपा की है। एक हजार, डेढ़ हजार रुपये खर्च करने पर भी मिट्टी नहीं भरी जाती उतनी मिट्टी भर गई। एक दो साल चले इतनी लकड़ियाँ आ गईं। गुलाब के पौधे या आम की कलम या बाड़ को जरा सी भी आँच नहीं आयी। मैं तो गरीब हूँ। भगवान भी सोचेगा न !

इसे लोग चाहे conincidence (सांयोगिक घटना) मानें, लेकिन हम तो इसे भगवान की कृपा मानते हैं। हमें कर्म उत्तम रीति से करने चाहिए, परंतु भूमिका को बनाने की आवश्यकता है और भगवान का नाम लेते-लेते वैसी भूमिका बन सकती है। काम करते-करते नाम लेते रहो। वैसा करते-करते प्रभाव होता जायगा। १२-१४ घंटे लेकर तो देखो, तो मालूम पड़ेगा। वैसे तो मालूम नहीं पड़ेगा।

मिले हुए का ऊर्ध्वारोहण

मेरे गुरुमहाराज ने कहा है कि अनेक जन्म हैं। पुनर्जन्म भी है। आगे और पीछे भी है। इससे प्रारब्ध भोगना होता है। और मिले हुए की गति ऊँची हो, इसके लिए मौनयज्ञ शुरू करने को कहा। मैं तो गरीब था। उन्होंने कहा था कि पाँच आश्रम होंगे, वह हो गये। मुझे दूसरी वृत्ति भी उठती नहीं। मेरे साथ काम करने वाले हरिवदन ठाकोर जैसे मित्रों को भी आश्चर्य होता है और कहते हैं कि हमारे से भी इस तरह चंदा हो नहीं सकता। जबकि मेरे जैसे गरीब द्वारा पाँच आश्रम हुए वह ईश्वर की कृपा है। **उस**की कृपा हो तो मनुष्य को रंक में से राजा बना दे। भगवान हजार हाथवाला है, यह बात बिलकुल सच्ची है। बारिश में शौच के लिए गड्ढे के शौचालय में जाने की तकलीफ है। हमें तो वैसी आदत

पड़ी है । हम तो साफ रखते हैं, परंतु शहर के लोगों को उसकी आदत नहीं । किसीने अच्छे पक्के शौचालय के लिए सलाह दी और शौचालय के लिए पैसे भी दे दिये तथा जिम्मेदारी भी स्वीकार कर ली । हमें तो भगवान की कृपा से जिसकी जरूरत होती है, वह मिलता ही जाता है । खाने पीने में तक़लीफ़ पड़े तो उसे भी हम उत्तम ही मानते हैं । **हम एक दाना भी फालतू नहीं जाने देते । हम किसी को नहीं दे देते । बचे तो दो समय भी चला लेते हैं ।** जो कहते हैं, उनको हम कहते हैं कि आप सलाह देते हो तो दो पैसे दीजिये न ? **पसीने की कमाई के पैसे दिये जा सकते हैं ।** इस में से देने को हमें अधिकार नहीं है । भात बचता है तो हर घंटे ठंडे़ पानी में रखते हैं । अचानक कोई लोग आ जाय तो जो बनाया हुआ है, उसमें से थोड़ा-थोड़ा खाकर चला लेते हैं । उसे भी अच्छा मानते हैं कि पेट में भार कम हो । यहाँ आकर देख सकते हैं । हमारे में कमी होगी । हम भी मनुष्य हैं । संपूर्ण होने का दावा नहीं करते । गुण-अवगुण हमारे हो तो उसे प्रेम से स्वीकार लो । आप दिल से सहकार दीजिये । दोस्ती रखिये ।

ऋण चुकाने की अनोखी रीत

हम व्यवहार में मदद नहीं कर सकेंगे । उलझन लेकर आओगे तो शायद सूझे वैसा रास्ता बता सकें । मेरा ईश्वर सिर पर किसी का कर्ज नहीं रहने देगा । नंदलाल तो यूरोप से आये थे । उन्होंने मेरी बहुत मदद की थी । मुझे ऐसा था कि उसने भाव से मदद की उसमें क्या ? परंतु गुरुमहाराज ने मुझे कहा कि यह मानना योग्य नहीं है । कोई पाँच रुपये दे तो उसका काम कर देना चाहिए । भावना के क्षेत्र में ऐसा नहीं चलेगा । जो आध्यात्मिक क्षेत्र में ऊपर उठा हो उसकी तो ज्यादा जिम्मेदारी है । मैं व्यापार के बारे में कुछ

नहीं जानता, परंतु उसका कर्ज अदा कर देने की लगातार उत्कट भावना सही । अपने आप ईश्वरकृपा से प्रेरणा हुई। मैंने उनको सलाह दी कि जितना हो सके उतना पारा खरीदो । लाखों रुपयों का-मिले तो उतना । उन लोगों को ज्यादा मिला नहीं । चालीस हजार से ज्यादा का मिला नहीं । उसमें रु. २०,०००/-का मुनाफा हुआ । उन्होंने मुझे मदद की थी । परंतु इतनी रकम नहीं दी थी। इससे ऋण अदा हुए बिना नहीं रहेगा । वह पैसों से ही अदा होगा ऐसा नहीं । मानसिक शांति या ऐसे ही एक या दूसरे मार्ग द्वारा भी अदा हो सकता है ।

मेरी सब से विनती है कि हम सच्चे मार्ग पर जा रहे हैं, उसमें मदद करें । हमारी मदद में रहें । तो भगवान आपको अवश्य मदद करेंगे । मेरा निजी खाता नहीं है । **भीखुभाई★ की माँ आकर रहे तो वह भी पैसे देकर रहे ।** हमारा मार्ग भले सेवा करनेवालों से अलग है, परंतु हम प्रामाणिकता, वफादारी, निष्ठा से रहते है, अहंकार से नहीं । भगवान की कृपा से आप सब मित्रों का दिल से सहकार माँगते हैं ।

दिनांक : २८-९-१९५९

★ हरि:ॐ आश्रम, सुरत के (श्रीमोटा द्वारा नियुक्त) व्यवस्थापक ट्रस्टी

॥ हरिः ॐ ॥

५. साधना का रहस्य

पराक्रम की जरूरत

अभी 'हरि को भजते' भजन गाया, वह यों तो सीधा सादा लगता है। मेरे स्वजन ने कहा कि उसमें अर्थ गांभीर्य नहीं लगता। उसमें उत्तमता नहीं है। सीधासादा लगता है। हृदय में चिपक जाय वैसा नहीं है। मुझे तो मेरी साधना में इस भजन ने बहुत सहारा दिया है। वह तो सब रहस्य दिखाता है। प्रह्लाद के जीवन में कितने-कितने तूफान आये ! हिरण्यकशिपु का पुत्र होने के बावजूद बाप ने बेटे को तपाया है। **इस** मार्ग में तो पराक्रम की बहुत जरूरत होती है। **इस** मार्ग में जो आँधी उठती है, उसके आगे कुदरत के तूफानों का कोई हिसाब नहीं। वह तो साधना में आगे बढ़े उसे मालूम पड़ेगा। द्वंद्वातीत, गुणातीत होने कि लिए भगीरथ प्रयास करना पड़ता है। ऐसा करने के लिए भयंकर तूफानों का समाना करना पड़ता है। उस समय भगवान का सहारा पकड़ रखे तो हिरण्यकशिपु रूपी अहंकार—उसे जो भी समझो—यह तो रूपक है—का नाश कर देता है। भगवान का सहारा उसका संहार कर डालता है।

गुरु के साथ दिल मिलाओ

कठिनाई, आफत में हमारा सच्चा मित्र हो वह सहाय रूप सिद्ध होता है। सहायरूप रहता है। ऐसी आफत के समय मित्र के वचन का सहारा सहानुभूति रहती है तो उसके साथ दिल की मित्रता हो जाती है। वैसी दिल से मित्रता भगवान के साथ भी हो तो अनुभव होता है। यह बात बुद्धि भी अस्वीकार करे वैसी नहीं है। कई स्वजनों को ऐसे सहारे के अनुभव हुए हैं, परंतु वह

सिर पर से निकल जाते हैं । गुरु के साथ दिल एक नहीं होता। सहाय होते हुए भी कुछ नहीं होता । जिस तरह मित्रों के बीच दिल के भाव होते हैं तो एक दूसरे की सहाय का अनुभव होता है । उसीतरह इसमें गुरु के साथ दिल मिले तो भगवान की सहाय मिलती है । प्रह्लाद कठिनाई आने के बाद भी झुका नहीं, फिर भी उसके पिता के प्रति उसके सद्भाव में जरा भी कमी आने नहीं दी । उसने प्रभु को उसका नाश करने की प्रार्थना भी नहीं की है। सिर्फ भगवान में अडिग श्रद्धा और टेक रखे । ऐसा करे तो भगवान सब दूर कर देंगे । हम जूझेंगे तो भी तूफान आएँगे । परंतु उन तूफानों की पलों में खमीर प्रगट करें तो ही उसकी असली क़ीमत होती है । ऐसे खमीर वाले मनुष्य का इस मार्ग में काम है ।

हमारी बाधाएँ

इस भजन में गाया है कि नरसिंह मेहता को भगवान हार अपने हाथ से उनके हाथ में देते हैं । और यह बात बिलकुल सच लगती है । मैं तो बिलकुल गरीब था, फिर भी ये आश्रम हुए हैं । कल्पना भी कर नहीं सकते इतना पैसा तुरंत दे देते हैं । 'तू मेरा हो जा तो मैं तेरा सब संभाल लूँगा ।'-गीता में ऐसा अभय वचन दिया है । मेरे में लीन हो जाय तो 'योगक्षेमम् वहामिअहम्' परंतु उसकी शर्त है—अनन्य भक्त होने की । लोग कहते हैं कि यह बात लगती है सच, परंतु उसमें विश्वास नहीं होता । संसार में, सगेसंबंधिओं, पैसे, पत्नी, संतानों में मन को पिरोकर के रखते हैं, परंतु भगवान में नहीं लगाते । फिर भगवान क्या करे ? उसका सहारा होते हुए भी समझ में नहीं आता है । सूर्य की गरमी की ऊष्णता बादलों के विघ्न के कारण महसूस नहीं होती । हम तो लोभ, मोह, अहंकार, क्रोध आदि बाधाओं से ढंके हुए हैं, इससे सहारा होने पर भी अनुभव नहीं कर सकते ।

'ध्रुव को दिया अविचल राज' यह पद है। ध्रुव को माँ भी रोकती है, और नारद भी समझाते हैं। फिर भी बालक अडिग रहता है। जंगल में जाता है, तब अविचल राज्य मिलता है। जब मनुष्य को एकमात्र भगवान का सहारा सच्चा लगे, उसमें विश्वास, श्रद्धा रखे तो सहारा मिले बिना नहीं रहेगा।

ज़हर पीने का

'मीरांबाई के ज़हर पीये' इसे भी रूपक मानें तो हमारे में भी अंहकार, मद, ईर्ष्या, क्रोध, मोह, माया रूपी ज़हर है। हम उसे निकालने का प्रयत्न करते हैं। उसे दूर करना चाहते हैं। फिर भी वह निकलता नहीं। कुरान में लिखा है, 'उत्तम भक्त टेकरी पर जाता है और टुकड़े करे डालता है, फिर भी वह बढ़ता जाता है।' कराची में एक अफसर आते और मुझे इस का अर्थ पूछते। मैंने कहा कि अहंकार के बारे में पयगंबर साहब ने यह कहानी रखी है। अहंकार को काटने पर भी उसके नये सिर निकलते जाते हैं, क्योंकि वह अनंत है। स्थूल काटने पर सूक्ष्म हो जाय और वैसा हो तो उसका नाश करना दुर्लभ, काटना दुर्लभ और वह तो विवेक से भी दुर्लभ। भगवान सब का ज़हर पीने को कहते हैं। भगवान की कृपा से और गुरुमहाराज की कृपा से इसमें मन लगाने का हुआ, तब वैसा हुआ है।

गुरु अनेक करो परंतु दिल एक हो जाने का-पिघल जाने का बनता नहीं वहाँ तक कसौटी में से निकलना नहीं होता। कई कहते हैं कि गुरु तो ऐसे हैं। गुरु का व्यवहार देखते जाते हैं। कौन कहने आया है कि गुरु करना! कहाँ विज्ञापन दिया था? पहले अग्निपरीक्षा में से निकलो। शांति रखो। जिसका दिल लगा हो उसके मन वह सरल है। यों तो बहुत कठिन है, परंतु दिल लगने

से सरल हो जाता है । तो सब ज़हर पी लेने की बात है । मीरां ने वैसा किया, इससे उसके ज़हर पीये ।

गीता में अर्जुन भी कहते है कि : 'वायु को वश कर सकते हैं, परंतु मन को वश करना कठिन है ।' यहाँ भी हम ही अर्जुन है, परंतु हम हिम्मत हार जाते हैं । कोई भी समस्या ऐसी नहीं जिसका हल न हो । सिर्फ मन का वैराग्य चाहिए, अभ्यास चाहिए । गीता में सातत्ययोग कहा है । वैराग्य अखंडता (continuity) से आ जाता है । चित्तशुद्धि से वैराग्य प्राप्त होता है और अभ्यास हो तो मन को वश कर सकते हैं ।

गरज

व्यापारी या किसान व्यापार में या खेती में चाहे जितनी कठिनाई आये हिम्मत हारता नहीं । व्यापार में भी तूफान आते हैं । घाटा होता है । दाम की उथलपुथल होती है । फिर भी हिंमत रखता है, क्योंकि उसे स्वार्थ होता है । गरज होती है । कमाई की मुश्किल होती है । किसान को भी खेती में कठिनाइयाँ आती हैं । कुदरती आफतें आती हैं, फिर भी वह उसे नहीं छोड़ता । वैसी गरज **इस** मार्ग में सचमुच प्रकट नहीं हुई है और जहाँ तक उसकी गरज नहीं लगेगी, वहाँ तक कुछ नहीं होगा । यह हल, इस भजन से मिला है ।

सत्संग

'पांचाली के पूरे चीर' दुःशासन वस्त्र खींचे और पांचाली जोर से पकड़ रखती है । अपने पुरुषार्थ से खमीर दिखाने का किया है और फिर भगवान को पुकारा है और भगवानने वस्त्र पूरे हैं । उसीतरह हम भी **इस** मार्ग को अचल श्रद्धा से पकड़ कर रखेंगे

तो भगवान वस्त्र अवश्य पूरेंगे, परंतु यदि उसके हो जाँय तो । इसलिए ऐसे होना चाहिए । और वैसे होंगे तो वैसा होगा । ऐसा हो उसके लिए सत्संग करो ।

हम माया में-भेद में फँसे रहेंगे तो जीव प्रकार की वृत्तिओं के संस्कार लेकर जन्म लेंगे । ऐसा शास्त्रवचन-उपदेश या कथा से भी नहीं बनेगा । मेरे गुरुमहाराज ने सुलझाव दिया कि प्रारब्धयोग तो तुम्हें भी भोगना पड़ेगा । इसीलिए अंदर बैठकर जो प्रयत्न करेंगे वह मरेंगे तब साथी बनेगा । यह स्मरण किसी भी रीत से नुकासान नहीं करेगा ।

मौनएकांत में स्मरण

कोई कहता है भगवान में श्रद्धा नहीं है, तो मैं कहता हूँ कि शब्द में शक्ति होती है । विज्ञान ने वह सिद्ध किया है । शब्द के कारण धुन प्रकट होती है । विचार कम आते हैं । दूसरे संस्कार मन में आये तो उसका प्रभाव ज्यादा नहीं होता । ऐसा स्मरण बाहर नहीं होता । अंदर १५-१७ घंटे ले सकते हैं । कोई दलील करता है-अंदर खाने-पीने का, नहाने-धोने का मिलता है, तो पेड़ के नीचे बैठ कर क्यों नहीं ले सकते, इसकी क्या जरूरत ? उसका जबाव यह है कि हमें इसकी आदत नहीं है । सरलता हो तो भगवान का नाम सरलता से लिया जा सकता है । जंगल में ध्रुव, प्रह्लाद जैसा कोई भी एक ही जा सकता है । यह आश्रम हुआ है तो सुरत के भाईबहन आते हैं । अंदर बैठनेवाले को शारीरिक कोई परेशानी होती है, परंतु अपने आप मिट जाती है । कोई तक़लीफ़ नहीं होती । कोई अंदर से लिखता है कि शरीर को ऐसा हुआ है । मैं उसे हिम्मत देता हूँ और अच्छा हो जाता है । मेरे में शक्ति है, ऐसा नहीं

परंतु ऐसी चेतनाशक्ति है कि भगवान को प्रार्थना करने से शारीरिक पीड़ा चली जाती है ।

चेतन के गुण

हमारे में भी चेतन है । आँखों से देखना, कान से सुनना, मुख से बोलना आदि चेतन के कारण ही होता है । वह हमारा रूप हो गया है । चेतन पेड़ के साथ पेड़ रूप में, अग्नि के साथ अग्नि रूप में, वायु के साथ वायु के रूप में और प्रकाश के साथ प्रकाश के रूप में होता है । वह हमारे स्वभाव के साथ एकरूप हो जाता है । जिस रूप में उसे देखेंगे वह रूप उसका हो जाता है । बिजली के पंखे में उपयोग करो तो पंखे के रूप में, बिजली के बल्ब में उपयोग करो तो प्रकाश देगा । ऐसा चेतन का है । प्रकृति और स्वभाव तक़्लीफ दे तो धैर्य रखना । प्रयत्न करेंगे तो वह चला जाने वाला है । उस पर भरोसा रखना-विश्वास रखना । बाढ़ आई और गई । बचपन, शरीर सब जाने वाला है । अंदर बैठने वाले को बेफिक्र रहना चाहिए । मन में घबरा कर क्यों नाहिंमत बनना ? आया हुआ जायगा । बाढ़ चली गई, तूफान भी चले गये ।

टेक रखो

हमारे ईश्वरभाई के जीवन में कई तक़्लीफें आई हैं । प्रांतिक समिति के प्रमुख भी विरुद्ध फिर भी उन्होंने एकमात्र मजूर प्रवृत्ति को पकड़ रखी । तक़्लीफें बहुत थीं, तभी खमीर मालूम पड़ता है । फिर भी उन्होंने आदर्श छोड़ा नहीं । किसी के दाब से झुके नहीं । अपनी शक्ति पर अटल विश्वास रखा है । वह जीवन में असर करता है । धारासभा में भी लिए गये है । परंतु दूसरे न जीत सके इसलिए लिए हैं, फिर भी उन्होंने अपनी टेक छोड़ी नहीं ।

जो टेक छोड़ते नहीं, उसे चेतन मदद करता है । चेतन सब कुछ होने के लिए शक्तिमान है । उसमें अनंत शक्ति है । उसे लाचार मत बनने देना । हम यदि सोचेंगे कि 'किस तरह होगा ?' तो वह काम तो नहीं होगा ! परंतु यदि 'क्यों नहीं होगा ?' ऐसा सोचेंगे तो जरूर होगा । चंद्र, मंगल पर भी उपग्रह-रोकेट उड़ने लगे हैं । वैज्ञानिकों ने बुद्धि एक में ही लगाई । कोई आदमी पत्नी के साथ बैठा हो या सिनेमा में हो या समुद्र किनारे घूमने गया हो तो भी वह एक में ही एकचित्त एकाग्र । **उस** के साथ शादी कर ली होगी तो काम बन सकेगा । सद्वर्तन, सद्विचार करके तो देखो ! संसारव्यवहार में उसका सहारा मिलता है । अच्छे विचार प्रकट करने के लिए भी साधन चाहिए । सुर और असुर के संग्राम में साथ तो दीजिये । एक ही प्रणाली में चला है । बीज तो होगा, वह विकसित होगा तो फल भी देगा । पुरुषार्थ करोगे तो जल्दी फल मिलेगा, अन्यथा नहीं होगा । चारों तरफ से दावानल प्रगट होता है। पुरुषार्थ लगातार नहीं होगा तो नहीं बनेगा, क्योंकि मन यह या वह करने में व्यस्त रहता है । इसमें ऐसा नहीं चल सकता । यह सरल साधन है । मौन के अंदर बैठने के बाद ही यह करना है इससे संस्कार पड़ेंगे । एक ही प्रकार की एकसी १७-१८ घंटे की प्रवृत्ति । इसे सातत्ययोग कहते हैं । उसके संस्कार पड़ते हैं और उस संस्कार का जब उदय-वर्तमानकाल होता है, तब वहाँ से आगे जा सकते हैं ।

सद्भाव से त्याग

जीवन में सद्भाव से व्यवहार करें, प्रेमभक्ति रखें, मिले हुए को त्याग की भावना से सहन करें-प्रेम से, अत्यंत कठिनाई से करने से नहीं चलेगा । संसार में हरएक को इच्छा या अनिच्छा से

सहन करना पड़ता है । काम में आना पड़ता है । पत्नी-संतानों के लिए काम में आना पड़ेगा । साथ में और इकट्ठें रहें हो तो कुटुंब के लिए काम में आना पड़ता है । हमेशां समझदार को ज्यादा मार पड़ती है। जब जब काम में आना पड़े तो प्रेम से, आनंद से क्यों नहीं करना ? प्रेम से वैसा करेंगे तो शांति मिलेगी और उसके लिए यह किया या वह किया उसका कोई अर्थ नहीं है । कलह, संताप भी आये, आशा अपेक्षा भी आएगी ।

प्रत्येक धर्म में माला होती है, जप होते हैं । बीजगणित (ॲल्जिब्रा) में जिस तरह कोमन फेक्टर सीखते थे, ऐसा यह जप प्रत्येक धर्म का कोमन फेक्टर है । बुद्धि से समझना हो तो समझ सकोगे, इस बारे में कोई फर्क नहीं है । यह अनुभव से मिली हकीकत है । उसके सहारे का अनुभव करने के लिए सहज-सरल साधन भगवान का स्मरण है । वह किया जा सके वैसा है । परंतु बाहर उसके लिए सरलता नहीं, फुर्सत नहीं । कुछ न कुछ रहा करता है । बाहर मौका नहीं मिलता । यह एक ऐसा साधन है । नियमित खाना, चाय-शौचालय सभी सुविधा अंदर । नामस्मरण लगातार लिया करो । जो संसार में नहीं हो सकेगा । इस साधन का लाभ लें । समय बढ़ता जायगा तो भगवान की दया से ऐसा वातावरण खड़ा होगा कि जिससे जोश (momentum) मिलता रहेगा। जो योगी लाये हैं, वह प्रकट हो सकेगा । कोई पूछता है, 'नामस्मरण से काम, क्रोध जाएँगें ? मैं कहता हूँ, 'हाँ जायेंगे ।' यह करके तो देखो । नामस्मरण अजपाजप तक ले जा । दूसरा जैसे करना हो वैसे करना । परिणाम जल्दी नहीं आएगा, वह जल्दी लाने, उठाव लाने निर्मोह, निरहंकार, निर्ममत्व आदि गुणों को विकसित करने पड़ेंगे ।

नींव की हक़ीक़त

खंभात में पृथ्वी में से गैस पर जितना दबाव लाते हैं, उतना दबाव होना चाहिए। श्वासोच्छ्वास के साथ नामस्मरण तू कर, अपने आप मालूम पड़ेगा। Sublimation (ऊर्ध्वगमन) की क्रिया है। प्राण चेतन की प्रक्रिया तब शुरू होती है। वैद्य रोगी की दवा करता है तो पहले मलशुद्धि करवाते हैं। आज नहीं करते। सात जुलाब होने के बाद दवा दे तो फायदा करती है। यह करना पड़ेगा तो ठिकाना मिलेगा। करना हो तो अजपाजप तक ले जाओगे तो होगा। इस जमाने में सच्चे गुरु भी मिलना मुश्किल है। कठिन समय है। बड़े-बड़े महात्माओं के दर्शन किये। परंतु नींव की हकीकत का ज्ञान नहीं मिलता। चमत्कार देखते रहे। एक महात्मा ने चमत्कार का पूछा, परंतु निरहंकार, निष्काम, निर्ममत्व की मात्रा कितनी कम हुई वह कोई नहीं पूछता। जो करने का है वह किसीकी चेतनाशक्ति से प्रकट होता है, वह तो जीवात्मा के साथ महात्मा का प्रारब्धयोग होता है। श्रद्धा प्रकट करने, सहजता से घोर परिश्रम सिर पर आ पड़ता है। श्रद्धा आदि चमत्कार से नहीं प्रगट होते। बाढ़ को भी साल दो साल में भूल जायेंगे। १९२७ में खेडा में आफत आई, परंतु वह भूल गये। चमत्कार को महत्त्व नहीं देना है। निष्काम, निरहंकार, निर्मोह कैसे हो सकते हैं, वह देखना वही सच्ची रीति है। अन्यथा भटक जाएँगे। इसका प्रचार नहीं करना। कई मित्र अत्युक्ति करते हैं। वे मेरे प्रति के भाव होने के कारण वैसा करते हैं। परंतु वे मुझे मुश्किल में डाल देते हैं। **इस** मार्ग में तो नगद पैसा चाहिए। जिस तरह रुपया लेकर जाँय तो नमकीन देगा। जो करना है, वह हमें करना है। यह दिखता है या वह दिखता है, उसका विचार मत करना। नडियाद में अलग-अलग

अनुभव हुए हैं, वह गलत नहीं है । भगवान अनंत है । I and my father are one. बाइबल में कहा है । ब्रह्म के गुणधर्म–शक्ति प्रकट हो तो साक्षात्कार हो । महात्मा कुछ करता नहीं । इंजन की प्रचंड शक्ति उसके द्वारा व्यक्त होती है । असामान्य शक्ति (Abnormal power) दिल प्रगट हुआ होगा तो अनुभव कर सकेंगे । आपको शंकराचार्य भगवानने कहा है, 'समुद्र और एक बिंदु समान है ।' समुद्र की प्रचंड शक्ति बिंदु में नहीं हो सकती उस तरह शरीर में महात्मा आये हुए हैं । कंकड़ लोहा नहीं बनता और लोहा सोना नहीं बनता फिर भी प्रारब्ध निमित्त प्रगट होता है तब वह पार जा सकता है । उस मर्यादा को भी लांघ सकता है, ऐसा अनुभव होता है । अंदर बैठे हुए को अनुभव होता है । हम समझ नहीं सकते इसलिए चमत्कार कहते हैं । रेडियो की बात । भजन रेडियो पर गाये जाते हैं, परंतु सभी जगह सुने जा सकते हैं । वह एक ही समय पर । चेतन फैलता है । भावना एकाग्र बने और उसे केन्द्रित करने में आये तो उच्च कक्षा पर जाय । फिर गाढ़ता प्रकट होती है, उसके सिवा नहीं ।

प्रचंड शक्ति भावना को फेंकती है । महापुरुष का संग मिथ्या नहीं जाता । महात्मा गांधीजी ने जीवनचरित्र में लिखा है । स्वराज्य प्राप्त करना मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है । स्वराज्य मिला परंतु व्यवहार का साधन (medium) ठीक नहीं । परिणाम उलटा आया । पच्चीस साल कठिन बिताने हैं । सुखी होंगे, संकल्प पूरा होगा परंतु (medium) माध्यम ठीक नहीं होने से परिणाम उल्टा हो जाता है । यह चमत्कार नहीं है । समझने का प्रयत्न करें तो समझ सकेंगे ऐसा है । समझ में नहीं आने पर चमत्कार कहते हैं । इसके पीछे विज्ञान का शास्त्र है । हम तो कामना, लोभ, मोह, आशा रखते हैं । **संग्रहपन**

जाय तो लोभ जाय । यह सच्चा सुख प्राप्त करने का मार्ग है । उसके प्रति विशेष लक्ष्य बने उसका महत्त्व है । **इस** मार्ग पर जाकर जो करने का है, वह यह करने का है। बैर मत रखो, प्रेमभाव से व्यवहार करो वैसा नहीं करोगे तो स्वयं दुःखी होंगे । मानसिक क्लेश, त्रास होगा । हम दूसरों के बारे में सोचते हैं । स्वयं के बारे में सोचते नहीं । सात दिन या इक्कीस दिन बैठे वह संपूर्ण नहीं हो जाता । वे सब भी आपके समान हैं ।

सब स्वयं के विकास के लिए

हम जो कुछ करें वह हमारे स्वयं के लिए करते हैं, ऐसी भावना रखें तो शांति मिलेगी । यहाँ एक-सी प्रवृत्ति **इस** मार्ग में रहा करती है । यहाँ कुछ भी अलगपन रहता है । उसके संस्कार इतने गाढ़ होंगे कि जो भी थोड़ा बहुत होगा वह सद्मार्ग पर ले जायगा। भगवान के स्मरण में बिलकुल नापसंदगी न लावें, वर्तनव्यवहार में प्रयत्न करें तो सुखशांति मिलेगी । और ऐसी शक्ति मिलेगी कि अडिग हो जाएँगे । तूफान में ऐसा सहारा मिलेगा । नामस्मरण ऐसा है कि इससे सहारा जरूर मिलता है । महात्मा गांधीजी ने भी लिखा है कि बचपन में अंधेरे में डर लगता, परंतु वे ऐसी प्रचंड व्यक्ति हो गये कि इतनी बड़ी सल्तनत को भी निकाल दिया । 'नवजीवन' में लेख पढ़ो 'लोहे के चने' पढ़ो तो रोम-रोम में खमीर प्रकट होगा । वे भी सामान्य मानवी थे, परंतु एक महिला के कहने से स्मरण करने लगे। तो सदैव सच हो उसका ही स्वीकार करते । प्रयोग किये बिना कोई बात मानते नहीं । सत्याग्रह का प्रयोग करना का मौकूफ रखा। फिर भी वे संयोगों के वश होने वाले-भाग जाने वाले नहीं थे । लोग कहते कि सत्याग्रह फोकट गया । चारों तरफ से समाचारपत्र टिप्पणी

करें। संत-भक्तों की बात में भक्तों ने अत्युक्ति की होती है, परंतु उन्होंने पराजय कबूल नहीं किया । पराजय का स्वीकार किया है परंतु पराजय नया पराक्रम करने के लिए है । फिर से उठने के लिए है, पड़े रहने के लिए नहीं । चलना हो तो कीचड़ में पैर फँस जाय । अंदर चला जाय, फिर भी आगे बढ़ते हैं । भाव होने से कीचड़ बाले रास्ते में से पैर खींचकर भी बाहर निकल सकते हैं । दूसरी बार ऐसा हो तो भी चलते हैं । युद्ध देते-देते भगवान के नाम में विश्वास था । वे सत्य का प्रयोग करने वाले थे । किसी भी बात का प्रयोग बिना स्वीकार नहीं किया । उसमें चेतनशक्ति सहारा देती है । महात्मा गांधीजी का जीवन दिखाता है कि उनमें निरासक्ति, निरहंकार, निर्ममत्व, निर्लोभ की भावना, सद्‌भाव, उदारता, निष्कामता, मतसहिष्णुता ऐसे प्रचंड गुण थे कि जिसमें से बहुत सीख सकते हैं ।

वृत्ति और दिल

हमारी वृत्ति प्रगट नहीं हुई है। साक्षात् भगवान मिले, परंतु वृत्ति न प्रकट हुई हो, तो कुछ नहीं होगा। उसमें मन लगेगा तो हो सकेगा। अभी की कक्षा में शारीरिक, मानसिक रूप से कक्षा न लगती हो फिर भी शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। अनुभव की यह बात है। जीवनचरित्र में लिखा है। छोटे-बड़े सभी काम भगवान की प्रेरणा से किये हैं। उन्होंने इतना सब शक्तिबल का कहाँ से अनुभव किया ? भगवान के स्मरण से। ज्यों का त्यों अखंड रूप से सातत्य बनाये रखा तो, और दिल एक हुआ हो तो मित्र की ऊष्मा मिलती है। दिल मिला हुआ हो तो बात कह सकते हैं और दिल हलका होता है। जिसतिस को बात करने से दिल हलका नहीं होता। दिल मिला हुआ हो वहीं दिल का गुबार निकाल सकते हैं।

आत्मनिवेदन

साधना में भी आत्मनिवेदन का भी एक प्रकार है । जैसे-जैसे अभ्यास रखें और भगवान को कहा करें तो उत्तम प्रकार से आत्मनिवेदन होगा । आत्मनिवेदन द्वारा अदृष्ट ऐसी शक्ति का अनुभव होता है ।

अंधे को सहारे के लिए लकड़ी चाहिए । वैसे जीवन में सहारे के लिए भगवान का स्मरण उत्तम है । जीवन में वह जो सहारा देता है ऐसा सहारा किसी ने दिया नहीं । महमद पैगम्बर साहब पर दुश्मन हमला कर देते हैं । लोग छिप जाने के लिए कहते हैं । वे लोग तबाह हो गये । ताजिये उनके पुण्य स्मरण के लिए हैं । अंत में दो जन ही रहते हैं । गुफा में चले जाते हैं । पैगम्बर साहब कहते हैं, घबराते क्यों हो ? तीसरा खुदा है ।

अभी की परिस्थिति का विचार करो । हरा अकाल पड़ा है । किसान ऐसे समय निराश हो जाय तो कैसे चलेगा ? सुरत में मुश्किल आई, लोग बरबाद हो गये, फिर भी मनुष्य टिका हुआ है । आत्महत्या करके मर नहीं जाता । निराश होते हुए भी टिका हुआ है । यह भगवान की शक्ति के कारण से है । उसे उजागर करने के लिए साधन चाहिए । यह साधन सरल साधन है । परिणाम उस मार्ग जितना ही, सब कर सके ऐसा । आबालवृद्ध, लूला, लंगड़ा सब कोई कर सके ।

सुखी होना हो तो

जीवन में सुखी होना हो तो यह करना । इससे शांति, प्रसन्नता टिकती है और सुखी हो सकते हैं । इसके लिए उपचार यही है । दूसरों के कारण से हमारे मन में घर्षण कम हो वह समझ आ जाय तो नाम की जरूरत नहीं । एक भाई ने कहा, 'मैं भगवान में

मानता नहीं ।' मैंने कहा, 'उत्तम वस्तु है । हमें सुख चाहिए । सब से परेशानी न हो वैसी इच्छा रखते हैं । तुमने सोचा है कि हमारे से किसी को परेशानी हो रही है या नहीं ? इस समय में शांति मिले, इसलिए दूसरे के कारण मनमें घर्षण न हो उतना करो । किसी भी तरह मेरे मनमें शांति प्रसन्नता प्राप्त करनी है । ऐसा सोचोगे तो शांति जल्दी आएगी । यह ख्याल में नहीं रखेंगे तो नहीं मिलेगी । दिल लगा नहीं है । इसलिए पसंद हो तो भी नहीं मिलता । दिल लगे तो जरूर मिले । जहाँ तक प्रयत्न हो सकता हो, उतना प्रयत्न न होगा तो ऊष्मा न आये, ज्ञान न आये, चेतन न आये । हमारे पुरुषार्थ में जरूर फर्क रहेगा । **पसंद हो तो एकदूसरे के दोष देखना बंद करें, तो शक्ति, प्रसन्नता टिकेगी ।'** ऐसा करते हुए भगवान का स्मरण करोगे तो बहुत उत्तम रीति से होगा । उसे यह बात बहुत पसंद आई । वह मुझे कराची में मिला था । मैंने उसे यह करने को कहा ।

दिल लगे तो

दिल लगे तो गरीब से गरीब मनुष्य करोड़ाधिपति हो जाता है । चरोतर के मफत गगल का वर्तमान का उदाहरण है । कपड़े की फेरी करता-सर पर गठरी रखकर बेचने जाता, परंतु वह जीते जीते करोड़ाधिपति बन गया । हमारा दिल लोलुपताओं में लगता है । इसलिए उस तरफ मुड़ गया । बुद्ध भगवान को वैभव कहाँ कम था ? परंतु उसमें से दिल निकल गया इसलिए खलास । मन से निकल जाय तो सब व्यर्थ ! वह कैसे निकल सकता है ? दिल उसमें लगा है, इसलिए वह जाता नहीं । कोई अतिथि चार-पाँच दिन रहने की इच्छा से आये परंतु यजमान का दिल न देखे

तो भाग जाता है । इसलिए हमारा दिल लगा हुआ होता है, उसमें टिके रहते हैं, यदि **इस** मार्ग में दिल लगेगा तो पुरुषार्थ होगा ।

लड़का बचपन में पढ़ने न जाय तो मार कर भेजते । जबरदस्ती भी पढ़ने के संस्कार ऐसे डाले जाते हैं । जबरदस्ती भी करोगे तो आप को मदद मिलेगी । महात्मा गांधीजी ने भी साबित किया है । उनकी वस्तुओं का संग्रह किया है, उसमें माला भी है । माला उनके पास रहती थी । प्रयोग के बिना वे माने वैसे न थे । वैज्ञानिकों ने H_2O यानी पानी साबित करके दिखाया, वैसे महात्माजी ने भी प्रयोग करके दिखाया है कि नामस्मरण से टिक सकते हैं । हम सब इकट्ठे मिलकर ऐसा प्रयत्न करें ।

दिनांक : १२-१०-१९५९

॥ हरिः ॐ ॥

६. भक्तों के दुःख

जगत की रचना

इस भजन में आखरी पद है, 'ऐसा हरि भजने का आनंद का उपभोग कोई करेगा रे ! हाथ जोड़ कर कहत प्रेमलदास, भक्तों के दुःख दूर करेंगे रे ।' भजन का यह आखरी पद समझने जैसा है । 'भक्तों के दुःख हरेंगे रे' समाज में पढ़ेलिखे व्यक्तिओं की मान्यता है कि भक्तों को समाज की दरकार नहीं है । वे समाज के लिए भाररूप हैं। परंतु भक्तों को अपने आप समाज की व्यक्तिओं के साथ प्रारब्धयोग से संबंध होता है । उनका लोगों के साथ ऐसा तादात्म्य विकसित है कि वह प्रत्यक्ष परिचय में आये तो मालूम होता है। परिचय के बिना मान्यता में भ्रम बना रहता है। भक्तकवि ने गाया है, 'भक्तों के दुःख हरेंगे रे ।' भक्त को संपर्क में आये व्यक्तिओं को परेशान और पीड़ित देखकर बहुत करुणा उत्पन्न होती है । वे उनके दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। जगत की रचना द्वंद्व की बनी है । प्रकाश-अंधकार, सुख-दुःख आदि । दुःख भी आता है, वह हेतुपूर्वक तालीम देने के लिए होता है । शिक्षा देने के लिए होता है । परंतु हम दुःख आने पर परेशान हो जाते हैं, घबरा जाते हैं। जो ऐसे समय घबराता नहीं और उसे शक्ति प्राप्त करने का साधन है उस तरह स्वीकार करता है तब उसे तालीम मिलती है । परंतु हम वैसा नहीं करते हैं । फिर शांति कैसे प्राप्त हो सकती है ? जिसमें तटस्थता, समता आदि हो वह दुःख से दुःखी नहीं होता। यह सब कहाँ से लाना ? हमारे में ऐसी शक्ति नहीं है कि ऐसे गुणों को विकसित कर सकें । प्रभुकृपा से और गुरुमहारज की कृपा से गुण विकसित करने का हुआ । यौवन ऐसे दहकते समय में गुजरा कि जिस समय में किशोरलालभाई आदि गुणों पर बहुत जोर देते थे ।

मैं हिमालय से नहीं आया हूँ। मैंने जो मनोमंथन किया है, मेरे साथी उसके जानकार हैं। ऐसे गुण विकसित करने के लिए सर्वोत्तम साधन स्मरण है। शब्द में शक्ति रही है। प्रसंगों द्वारा ही उस बात का विश्वास प्रकट होता है। सिर्फ बोलने से क्या होगा? स्मरण के साथ भावना न हो, प्रेम न हो तो कुछ भी नहीं होगा। मैं कहता हूँ कि 'एक ही शब्द को बारबार रटने से ऐसी स्थिति होगी कि सभी बाबतों से अलग हो जाएँगे।'

स्मरण से समता

भगवान का स्मरण वह एक ऐसा साधन है कि संसार की अनेक तकलीफें आये उनमें समता बना सकते हैं। **एक ही शब्द के बारंबार उच्चारण से धुन प्रकट होती है। धुन से एकाग्रता प्रकट होती है और एकाग्रता से लय** (Rhytham) **प्रकट होती है।** वह ज्ञानतंतु में मार्दवता प्रगट करनेवाली है। अभी के समय में ज्ञानतंतु इतने उत्तेजित होते हैं कि उनको शांत करने कि लिए भगवान का स्मरण यह प्रयोगात्मक क्रिया है। प्रयोग करो तो पता लगे। मुझे तो देशसेवा की धुन थी। आध्यात्मिक मार्ग की कुछ खबर न थी। गरीबी भी भयंकर थी। उस परिस्थिति में तानें से बदल न जाँय उसके लिए गंगाजल के साथ देशसेवा करने का प्रण लिया था।

महात्मा गांधीजी की पूरी नींव नामस्मरण पर थी। हमने वह छोड़ दिया है। सभी मनुष्य भक्त नहीं हो जाएँगे। रागद्वेष को मिटाये बिना सात्त्विकता प्रकट होगी नहीं, जहाँ तक सात्त्विकता नहीं प्रकट होगी तब तक जगत से मुठभेड़ होती रहेगी। हम सब गांधीजी की अहिंसा का मर्म समझे होते तो हमारी यह स्थिति नहीं होती। महात्मा गांधीजी ने तो यहाँ तक कहा है, 'रोगमात्र भी नामस्मरण से ठीक हो सकते हैं।' उन्होंने हमें जगाया था। भगवान का स्मरण एकसा

हुआ । अंग्रेजी शिक्षा का एक सब से बड़ा लाभ है । उससे अनुसंधान की शक्ति Research power (रिसर्च पावर) प्राप्त हुई। पश्चिम की शिक्षा का यह सब से बड़ा लाभ है। चाहे लोग उसकी निंदा करें, परंतु यह कबूल किये बिना चले ऐसा नहीं है ।

मैं और परीक्षितलालभाई प्रातः ४ से रात्रि १० बजे तक टेबल पर आमने सामने बैठकर काम करते । भटकते भी सही फिर भी थकान नहीं होती थी। ठक्करबापा ने लिखा है। वे वैसे कभी लिखेंगे नहीं । उस समय तो भावना की लहर प्रकट हुई थी । उसका वातावरण में भी असर था । जिन्होंने उसका पूरा लाभ लिया है, वे आज भी खमीरवाले हैं ।

मौनएकांत में साथ

मैं नम्रता से कहता हूँ कि भगवान का नामस्मरण भी कर सके ऐसी वस्तु है । उसमें लग सकते हैं । परंतु आज भावना नहीं है। और उसके प्रति सचमुच दिल तैयार नहीं है । यहाँ तो ब्राह्मण, मुसलमान, जैन, ख्रिस्ती सभी बैठ सकते हैं । अभी नडियाद में एक ७५ वर्ष के वृद्ध बैठे थे । उनको आँखों से भी दिखता नहीं था । मैंने उसको डर भी बताया कि अंदर बहुत तक़लीफ़ होगी, फिर भी पीछे नहीं हटे और दृढ़ निश्चय करके अंदर बैठे । मैंने बैठते समय कहा था, 'आपके साथ अंदर कोई होगा यह अवश्य मानना।' हम मौन में बैठनेवालों का पूर्णाहुति के अगले दिन निवेदन लेते हैं । उन्होंने ऐसे निवेदन में लिखा है, 'किसी भी दिन अकेलापन नहीं लगा ।'

परहेज के साथ औषध

भक्तों ने जीवन में समर्पण करके न्योछावर करके, जो जाना है, वही करुणा भावसे लोगों के आगे रख दिया है, उन्हें भी करुणा प्रकट हुई है । इसलिए संसार में मिले हुए धर्म का पालन करते

करते समझदारी से जीना रखो । वैद्य लोग जो पहरेज बताते हैं, वैसा यह परहेज है । जिस तरह वैद्य की परहेजी का पालन नहीं करने से औषध का लाभ नहीं होता उसीतरह भगवान के नाम का (नामस्मरण करते हो तो) उठाव भी सात्त्विकता नहीं प्रकट होने से नहीं आती । हम भी औषध के पीछे परहेजी जैसी परहेजी नहीं पालते हैं । स्मरण करते-करते अजपाजप तक जाय तब रूपांतर (sublimation) की प्रक्रिया होने लगेगी । इसका भी H_2O यानी पानी जैसा गणितशास्त्र है । यह होने के बाद ही कैसा रूपांतर होता है, उसका अनुभव कर सकते हैं ।

मन को नीरव करने, शांत करने दूसरे भी साधन हैं । तंत्रमार्ग में भी गूढ़ साधन है । उसके लिए चित्तशुद्धि की बहुत-बहुत आवश्यकता होती है । चित्तशुद्धि हो तो ही अनुभव हो सकता है । इसलिए उसके बिना नहीं दिखा सकते । परंतु गुरुमहाराज की कृपा से वह सब किया हुआ है, अनुभव किया हुआ है । उससे दूसरे भी लक्षण प्रकट होते हैं । मेरे साथ अनुभव में आये हुए को पूछो कि व्यापार में भी सलाह दी है । समस्याओं का हल बताया है । परीक्षितलालभाई तथा दूसरे सभी सहकार्यकर कहते हैं कि चूनीलाल भगत इतने होशियार होंगे ऐसा वे कभी मानते न थे । **इस** मार्ग पर जाने से बुद्धि का भी विकास होता है, परंतु वह याहोम करके पड़े बिना नहीं हो सकता । किसी भी वस्तु के हार्द को पकड़ने के लिए कठोर अभ्यास की आवश्यकता है । लस्टम-पस्टम करने से हार्द को पकड़ नहीं सकते । फिर भी विशेष में शांति प्राप्त करने के लिए भी यह प्रयोग करने की जरूरत है । मैं किसीसे कहता नहीं । जिसे करना हो वह करे । यह भी सिर्फ गुरुमहाराज की आज्ञा से मौन की पूर्णाहुति के समय कहता हूँ ।

दिनांक : १९-१०-१९५९

॥ हरिः ॐ ॥

७. जप ही यज्ञ

दिल की शुद्धता

शुरूआत में जो कहा, 'हाथ जोड़कर कहे प्रेमलदास भक्तों के दुःख हरेंगे रे !' उसमें अर्थ यह है कि भक्त है, वह भक्ति के रस में लीन होते हुए भी समाज से अलग नहीं हो सकता । समाज से अलग हो ही नहीं सकता । ऐसा हो तो ऐसा लिखते ही नहीं कि भक्तों के दुःख हरेंगे । संसार के लोग दुःख का अनुभव करते हैं । अनेक प्रकार की परेशानियाँ सहन करते हैं । परंतु उनको उसमें से उबरने का कोई उपाय नहीं है । उन उपाधिओं में से निकलने के लिए आश्वासन पाने का संसारी लोगों को उपाय नहीं मिलता । इसलिए भक्त लोगों को ऐसा लगता है कि इसमें से इन लोगों को उबारना चाहिए । भक्तों के दुःख हरेंगे अर्थात् भक्तों के दुःख सरलता से दूर हो जाते हैं वैसा नहीं, परंतु इस संसार के रागद्वेष दूर करने चाहिए । परिवार के लोगों के साथ प्रेमभाव रखें । एक दूसरे के साथ प्रेम विकसित करें, इस तरह हमारे चित्त में शुद्धि प्रकट हो और काम, क्रोध, लोभ, मोह में से निकलें और साथ-साथ ईश्वर की भक्ति करें । द्वंद्वातीत, गुणातीत बनें । भगवान का नाम लेते लेते अनासक्त हो जाँय । निर्मोही, निराग्रही कैसे बनें वही देखना चाहिए । **भगवान का स्मरण करते-करते यदि ये गुण विसकित हों तो ही सच्चे दिल की शुद्धि हो सकती है ।** गुण में से शक्ति प्रकट हो और उस तरह काम चलेगा ऐसा मुझे लगता था । परंतु उन गुणों को विकसित करने से कुछ ज्यादा नहीं हो सकता है ऐसा भी मुझे लगा था, परंतु गुरु के पास जा सकूं ऐसा नहीं था । अतः दिल से ही गुरु को खोचने का मैंने प्रयत्न किया ।

सभी यज्ञों में जप वह मुख्य है। गीतामाता बड़े से बड़ा फिर भी छोटे से छोटा ग्रंथ है। (गांधी) बापू ने भी गीतामाता की बात की है। गीता मैं भगवान कहते हैं कि सभी यज्ञ में मैं जपयज्ञ हूँ। तब स्थूल यज्ञ तो मैं समझता न था। इन सब से जपयज्ञ विशेष है। हमारी अनेक प्रकार की वृत्तिओं को सूक्ष्म रीति से योग्य भाव में मोड़ना उस तरह जपयज्ञ का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा एक प्रयोग करने का विचार आया।

जपयज्ञ

नामस्मरण में अखंडता प्रकट हो तो ही सच्चा राम का स्मरण हो सकता है। भगवान का नाम लेने से तुरंत स्वभाव नहीं बदलेगा। जन्मोजन्म का योग है। एक ही जन्म में जो मुक्त हो गये वह तो अपवाद है। सामान्य लोगों के लिए तो जन्मोजन्म का योग है। इसका भी गणितशास्त्र है कि नामस्मरण में अखंडता प्रकट हो तो ही हमारी वृत्तियाँ धीरे-धीरे बदलेंगी। वह होने के बाद ही धीरे-धीरे हमारे जीवन में शुद्धि आएगी। चाहे जैसे दुःख आयें, क्लेश हो तो भी ईश्वर का नामस्मरण करो, तो दुःख दूर होगा। उच्च स्वर से नामस्मरण करने से विचार बहुत कम आएँगे। मन अभी उसके लिए तैयार नहीं है। इसलिए उच्च स्वर से बोलना चाहिए। अभी की हमारी जीवदशा में मन संकल्प-विकल्प करता रहता है। इससे **नामस्मरण उच्च स्वर से करना चाहिए। परंतु उस तरह करते-करते निर्मोही बनना, निर्मल मन की शुद्धि प्राप्त करना।** इसमें कोई चमत्कार नहीं है। चमत्कार को महत्त्व देने की जरूरत नहीं है। **मौन में बैठने से हम कैसे अनासक्त बनेंगे ऐसी स्वयं की जागृति विकसित करना यही मुख्य है।**

गुण और शक्ति प्रकट होते हैं

भगवान का स्मरण करते रहेने से भावना की एकाग्रता होगी।

भावना स्थितिस्थापक नहीं है । उसमें गति है । भावना प्रकट होती है, तब वह भोला नहीं होता, परंतु उसकी बुद्धि सूक्ष्म बनती है । भक्त भोले नहीं होते । मेरे साथ अनेक क्षेत्र के मनुष्य हैं । व्यवहार-कुशलता भी मेरे में है । इससे हरएक को मार्ग दिखा सकता हूँ । भक्ति में लीन होने से बुद्धि संकुचित होती है, ऐसा नहीं है, परंतु बुद्धियोग होता है । उसकी बुद्धि विशाल बनती है । वह सब के साथ हिलमिल सकता है, वही सच्चा भक्त है । उस स्थिति को प्राप्त करने का साधन यह है । भगवान का नाम सतत लेते रहें तो उसमें से गुण और शक्ति दोनों प्रकट होते हैं । ऐसा यदि हो तो शक्ति, उत्साह आदि मिलते हैं । सेवा का कार्य करते-करते ऐसा लगा कि सेवा दूसरों के लिए नहीं, परंतु वह मेरे लिए ही मैं करता था । उस सब के पीछे रागद्वेष दूर करके सभी के प्रति दिल में प्रेम प्रकट करने का ही कार्य किया है । **प्रेम का पहला लक्षण तो त्याग है ।** उस प्रेम के कारण कुछ भी करें तो वह हमें सहज लगता है । साधना के लिए यदि कोई क्षेत्र चाहिए तो वह कार्य इस तरह सेवा करने से हो सकेगा । हम सब के लिए सद्‌भाव, प्रेम आदि विकसित करें । दूसरी तरह कहें तो हमारा दुःख बढ़े, मन में क्लेश बढ़े ऐसा न करें । नामस्मरण से अखंडता प्रकट हो-उसमें से नीरवता प्रकट होती है । भावना से धारणा अखंडरूप से हमारे में प्रकट हो, तब जीवन का प्रवाह बदल जाता है । ऐसी भावना प्रकट हो तो ही हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि हमारे में से नष्ट होंगे । इतना करना वह तो बहुत आगे का है, परंतु आज तो नामस्मरण करना वही पहला कदम है ।

दिनांक : २१-१२-१९५९

॥ हरिः ॐ ॥

८. भावना की धारणा

मनन-चिंतन

जीवन के किसी क्षेत्र में या प्रवृत्ति में जहाँ तक किसी भी स्थिति में होंगे वहाँ तक किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति में रहते हैं। इसलिए ऐसी किसी भी प्रवृत्ति में हों तो उसका मनन-चिंतन आवश्यक है, उसमें टिके रहने के लिए भी मनन-चिंतन की आवश्यकता है ।

ऐसा चिंतन होने के अनेक कारण हो सकते हैं । किसी परेशानी, फिक्र, चिंता हो या किसी समस्या के कारण भी जीवन में मनन-चिंतन होता है । ऐसा प्रत्येक क्षेत्र में हरएक जीव को कम या ज्यादा अनुपात में होता रहता है ।

जीवनविकास के क्षेत्र में जीवनविकास यानी क्या ? जिस स्थिति में हो, उसमें से ऊर्ध्वगामी जीवन जीने के लिए वृत्ति हो और उस तरफ की प्रवृत्ति रहनी । जीवनविकास के प्रति जीव में जहाँ तक ज्वालामुखी समान दहकता हुआ भाव प्रकट नहीं होता, वहाँ तक उस प्रकार की वृत्ति तुरंत जागृत नहीं होती । इस तरह जीवनविकास की प्रवृत्ति की तरफ हमें एक प्रकार का आकर्षण है, क्योंकि इसके सिवा हमारा छुटकारा नहीं होता । ऐसी कोई भी प्रवृत्ति हमें चलानी हो तो उसका मनन-चिंतन रहेगा ही । सामान्य व्यापारी व्यक्ति को भी मनन-चिंतन रहेगा क्योंकि उनको अपना विकास करना होता है । प्रोफेसर, स्कूल के शिक्षकों आदि व्यक्तिओं को ऐसा मनन-चिंतन बहुत कम होता है । जिस का स्वतंत्र लक्ष्य हो उसे ज्यादा होगा । तो किसी नीतिमान प्रामाणिक नौकरी हो, उसे मनन-चिंतन हो या करना पड़े, परंतु वह अनुपात में कम होता है ।

स्वयं की खोज के लिए मौनमंदिर

इस संसारव्यवहार में हम अनेक जीवों के साथ जुड़े हुए हैं और उसके कारण प्रत्येक के साथ के व्यवहार-वर्तन में प्रत्याघात होते हैं । उससे दु:ख, पीड़ा, क्लेश, हर्ष, शोक आदि होता है । ऐसे किसी प्रदेश में हम जाँय कि जिससे यह सब दूर हो सके। जिसे इन सब से दूर जाना हो, उसे उसके लिए प्रयत्न करना ही रहा। जिसमें दहकती जिज्ञासा हुई हो, उसे प्रयत्न न भी करना पड़े। जैसे रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि, श्रीअरविंद। उनको भी साधना करनी पड़ती है । ऐसा ही उदाहरण श्रीकृष्ण भगवान का । उनको भी साधना करनी पड़ी । ऐसे व्यक्ति अपने साथी भी साथ में लेकर आते हैं। उदाहरण : कृष्ण भगवान को सांदीपनि के घर निमित्तरूप से भी साधना करनी पड़ी थी । इससे ऐसी भावना विकसित करने के लिए पुरुषार्थ की जरूरत है । उसके लिए अलग-अलग संप्रदाय हो सकते हैं। यदि भावना को विकसित करना हो, निरंतर प्रवर्तन करना हो, तो पुरुषार्थ की जरूरत है ही । सब के लिए पुरुषार्थ के बिना संभव ही नहीं । उस भावना को जीवित रखने के लिए हरएक जीव अपने अनुकूल ऐसे प्रयत्न से उसे आगे बढ़ाये। **ऐसा प्रयत्न या पुरुषार्थ वह साधना की रीति ।** उसके लिए यानी कि ऐसी साधना के लिए शांत और अक्षुब्ध वातावरण की खास जरूरत होती है। उसके बिना असंभव। यानी कि संसार में भावना के विकास की प्रवृत्ति करते रहना सामान्य रीति से असंभव । इससे ऐसे एकांत की आवश्यकता सही । इससे उस भावना को अखंड रखने के लिए सामान्य रीति से प्रत्येक जीव को उसकी अपनी पसंदगी की रीति के लिए ऐसे एकांत की आवश्यकता सही । इस कारण से ऐसे आश्रमों की जरूरत है ।

और इसलिए ऐसे आश्रम बनायें हैं । इसमें कोई पंथ या संप्रदाय का बंधन नहीं है । श्रीमाताजी, श्रीकबीर या अन्य कोई फोटो रखने में भी कोई एतराज न हो । ऐसे ही एक नडियाद आश्रम में जैन भाईं भी बैठे हैं । पारसीभाई भी आये हैं । इससे इस रचना में जीव स्वयं को स्वयं का खोजनेवाला बन सके और उसके चित्त में जो सुषुप्त संस्कार पड़े हैं, वह अनेक को उमड़े भी सही ।

जो भावना में सतत लीन है, उसे ऐसी आवश्यकता नहीं है। परंतु जिसे स्वयं स्वयं को खोजना है, जिसके मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् में अनेक संस्कार पड़े हुए हैं उसके लिए है । जिसे इसमें किसी प्रकार की समझ नहीं है, उसके लिए ऐसी आवश्यकता है ।

भावना की आवश्यकता

जीवनविकास के क्षेत्र में भावना की धारणा की बहुत जरूरत होती है । मेरे लिए मैंने प्रभुकृपा से बुद्धि को गुरु माना था और पैसे नहीं थे, इससे गुरुमहाराज के पास नहीं जा सकता था । इससे सिर्फ बुद्धि के आधार पर भावना विकसित करने नामस्मरण, ध्यान आदि साधन लिए थे ।

ऐसे कर्म करने पर भी भावना की एकाग्रता, जप ले सके ऐसा कभी नहीं होता । इसमें अपवाद हो सकता है, परंतु उसे भी साधना की जरूरत सही है । इससे हमें तो कोई भी साधन पकड़ लेने की जरूरत है । इससे उसकी Awareness रखने के लिए कोई भी साधन लेना ही चाहिए ।

कर्म करते-करते गुरुमहाराज का भान, ध्यान रहे यह भी जरूरी है, परंतु एकदम वह संभव नहीं है । यह सब जरूरी है, परंतु वह होने के लिए भक्ति प्रकट होनी चाहिए । और ऐसी अखंड प्रेमसहित

की भक्ति प्रकट हो जाय तो बहुत सरलता रहेगी । अन्यथा इतना ध्यानमग्न रहना बिलकुल संभव नहीं है । ऐसा होने में भावना का एकसा भाव प्रकट हो तो हो सके सही ।

किसी साधना की रीति से प्रगट हुए बिना शायद ही इसमें अपवाद भी हो सकता है, परंतु बिना प्रयत्न किसी की भावना की धारणा रहे वैसा मैं मानता नहीं । वैसे को तो मेरा प्रणाम । हाँ, किसी को एक ऐसी जबरदस्त भक्ति प्रकट हो गई हो तो ऐसा हो सकता है । इससे ऐसी भावना की धारणा एकसी रहे तो हम द्वंद्वातीत या गुणातीत हो सकते हैं । धर्म वह विस्तृत शब्द है, संप्रदाय शब्द संक्षिप्त अर्थ में है । भावना की निरंतरता किस तरह बनी रहे वह हरएक का अलग विषय है । ऐसी भावना की धारणा अखंड प्रकट हुए बिना हम किसी भी प्रकार के मनोभावों से पर नहीं हो सकते । भावना की प्रचंड बाढ़ आये तो संपूर्ण भावना का प्रवाह बदल जाएगा । उदाहरण : हमारे यहाँ तापी नदी में प्रचंड बाढ़ आई थी तो कितना प्रवाह बदल गया था ।

भावना का परिणाम

हमारे में रहे हुए काम, क्रोध, मोह, मद, ईर्ष्या यदि ऐसी भावना की प्रचंड बाढ़ आये तो ये सब निकाल सकते हैं । इससे भावना से ये प्रचंड बाढ़ आये तो पूरा प्रवाह बदल जाएगा । अर्थात् हमारे सभी गुण बदल जाएँगे ।

यदि भावना की प्रचंडता प्रगट हो तो उत्पातीपन भी निकल जाय । यदि ऐसी भावना की ऐसी बाढ़ प्रकट हो तो शांति, स्थिरता आदि रह सकते हैं । उदाहरण : जैसे कोई वैज्ञानिक उसकी खोज में एकसा रहता है वैसे । उसीप्रकार से यदि किसी को इसमें लगन हो तो उसे एकसा इस प्रकार का प्रयास करना ही पड़ेगा ।

संकल्प का बल

यदि आठों प्रहर सत्त्वगुण की नीति हमारे में प्रकट हुई हो तो साक्षात्कार की भावना प्रकट हो सकती है । किसी भी भावना के विकास में आगे बढ़ें तो ही आगे जाने का मार्ग खुलेगा । भावना के क्षेत्र में ज्यों का त्यों आगे बढ़कर अखंडता नहीं प्रकट होगी । प्रतिदिन ध्यान में बैठो और थोड़ी-थोड़ी बातबात में क्षुब्ध हो जाँय तो हमारी एकाग्रता नहीं हुई; कहा जायगा । इससे ऐसी strong will या संकल्प का बल प्रकट हुए बिना ऐसी एकाग्रता प्रकट नहीं हो सकती है । अतः प्रत्येक के लिए अभ्यास की जरूरत है और प्रत्येक की अभिरुचि अलग-अलग होती है इससे प्रत्येक की रीति भी अलग होगी, इससे प्रत्येक के लिए अभ्यास से कभी-कभी भावना का मूड प्रकट हो या उफान आये । अन्यथा, अखंड भावना की स्थिति न रहे तो ऐसे उफान से इसके बारे में काम हो जाने वाला नहीं है । इसलिए ऐसे अभ्यास से बैटरी चार्ज हुआ करती है । इसलिए भावना की एकाग्रता, केन्द्रितता होने की जरूरत है । और वह होने के लिए मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् की नीरवता होने की जरूरत है । **मन का धर्म संकल्प, विकल्प करने का है । प्राण का धर्म कामना, आशा, तृष्णा, लोलुपता, इच्छा आदि । यह सब मिटा देने की जरूरत है । इससे अकेले भगवान की भावना छटपटी की जरूरत है ।**

बुद्धि में श्रद्धा प्रगट करनी है । बुद्धि से तर्क, दलील आदि करें तो समता प्रगट नहीं होगी । समता प्रगट करना यह बुद्धि का क्षेत्र है । अहम् से जीव और चेतन दोनों दशा में क्रियाशील हो सकेंगे । अहम् से साक्षी, द्दष्टा, भोक्ता, प्रभु हो सकते हैं, इससे अहम् दोनों में ले जाता है । उससे साक्षात्कार भी होगा और नीचे भी

जाएँगे । इससे भावना की अखंडता प्रकट करने के लिए किसी भी रीति की जरूरत है ही ।

गुरु के प्रति राग

ध्येय के प्रति सचमुच की भावना और जिज्ञासा के बिना भावना की अखंडता कैसे प्रकट होगी ? हरएक को ऐसा होने वाला है ही नहीं । इससे जिसे ऐसा प्रगट हो जाय उसे धन्यवाद । वही उसका सद्गुरु । यदि किसी जीव को गुरु के प्रति राग प्रकट हो जाय हमें हजारों मील दूर से भी वायरलेस की तरह मार्गदर्शन दे सके । उसके लिए ऐसी सच्ची एकसी प्रेमभक्ति प्रकट होनी चाहिए। वह प्रकट हुई है या नहीं वह जाँचना और उसके लिए हमारे जीवन में प्रतिदिन कैसी वृत्ति, अभिगम और दशा उदय होती है, उससे जाँच सकते हैं कि हमारे में ऐसी एकसी प्रेमभक्ति प्रकट हुई है या नहीं ?

अर्थात् जब ऐसा हो सके, तब आपको सोचना है कि इसमें हम कहाँ हैं और कितने तक हैं ।

श्रद्धा

कर्म किसी से अलग नहीं है । भक्ति ज्ञानमूलक है । बिना श्रद्धा के ज्ञान नहीं प्रकट होता है । 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' ऐसा गीतामाता में कहा है ।

श्रद्धा अंधी नहीं होती । श्रद्धा सहस्रनयनी होती है । श्रद्धा जीवन है । श्रद्धा से विश्वास होता है । उसमें भेड़चाल हो जाय तो वह अंधी भी बनेगी । यदि एक के प्रति एकसी ऐसी भक्तिपूर्वक की श्रद्धा प्रकट हो तो निश्चयात्मक बुद्धि प्रकट होगी । ऐसी श्रद्धा के प्रगट हुए बिना मन में नीरवता प्राप्त होना और अहम् को टालना असंभव। भावना की अखंडता या अटूटता प्रकट हो तो ही यह

बन सके। तो श्रद्धा सहज बन जाय । उसके लिए भावना की जरूरत है । तो भावना अखंड काल तक टिक रहे उसके लिए मनन-चिंतन की जरूरत और उसके लिए साधना की किसी रीति की जरूरत है । उससे भावना की अखंडता रहा करे ।

दिनांक : ४-१-१९६०

॥ हरिः ॐ ॥

९. सच्चा तप

दुर्लभ मानवजीवन

हमें मनुष्यजीवन मिला है । इस पृथ्वी पर मनुष्यजीवन मिलना, अन्य जीवों के जीवन से दुर्लभ है । यह तो महादुर्लभ है, ऐसा सब बोलते हैं । साधु-संन्यासी से लेकर सभी संसारी जीव भी ऐसा बोलते हैं । हम वैसा बोलते हैं, परंतु उसका उपयोग नहीं करते । मेरे पास यहाँ आनेवाले भी वैसा बोलते हैं, परंतु उस प्रकार व्यवहार नहीं करते । उस दिशा में किसी की गति नहीं है । कोई संसारी ऐसा कहे कि मेरे पास रु. ५०,०००/-हैं, तो वह किताब में दिखा सके सही ना ? यदि लेनदेन का व्यापार करना हो तो पहले जिसके साथ व्यापार करना हो उसकी प्रतिष्ठा जाँचेगा और वैसा करेगा तो लेनदेन का व्यापार कर सकेगा । उस तरह सब कहते हैं कि भगवान का नाम ही सच्चा है, परंतु कोई वह लेता है सही ? मेरे गुरुमहाराज ने तो मुझे डंडा दिया था । मेरा चले तो दो मार भी दूँ । तेरा संसार, पत्नी-संतान, व्यापार सच्चा है, परंतु तुझे भगवान का नाम सच नहीं लगता ? यहाँ आने वाले भी बहानें बनाते हैं कि काम था । बहानें बनाना वह तो दंभ है । सच्ची बात करने का मेरा धर्म है । इससे दंभ न रखें । आप मेरे मित्र हुए हो तो सच बात कर देनी चाहिए । यदि आप से मेरा कर्म न बने तो मना कर देना । बने तो करना । यदि आप प्रेम से करोगे तो देखो होता है या नहीं ? यहाँ तो प्रेम का बंधन है ।

आज्ञापालन

मैं आश्रम की भूमि पर बैठकर कहता हूँ । मेरे गुरुमहाराज ने मुझे समुद्र में चले जाने की आज्ञा दी थी । उसके प्रत्यक्ष साक्षी हैं । हमारे पास तो हरएक बात का सबूत है । हम समुद्र में उस

तरह गये थे, तब दूसरा कोई विचार नहीं आया था । गुरुमहाराज की आज्ञापालन का ही ख्याल था ।

इस तरह की शरणागति भगवान के प्रति विकसित करनी पड़ेगी । अत: **इस** मार्ग में शरणागति बहुत जरूरी मानी जाती है। इस तरह की तैयारी करनी चाहिए ।

धन का सदुपयोग

आप सब को संसार प्रिय है । भगवान की बात करना आप को पसंद नहीं है । हिंदुस्तान के लिए कठिन समय आ रहा है। पच्चीस साल ऐसे जानेवाले हैं । हमारे पास धन है और शक्ति भी है । शक्ति का तीन तरह से उपयोग कर सकते हैं । शक्ति का माता के रूप में उपयोग करें, तो वह पालपोस कर बड़ा करें । उसको खर्च न करें । दूसरे पत्नी की तरह उसका उपयोग करें और तीसरे पुत्री के रूप में उसे बड़ी करके दूसरों को देते जाँय । यह हकीकत है । तो शक्ति का ज्ञानपूर्वक, भक्तिपूर्वक उपयोग न करो तो कैसे चलेगा ? संसारव्यवहार में धन बहुत काम में आ सकता है। उसका सदुपयोग करना चाहिए । अकेले मत खाना, बाँटकर सदुपयोग करके खाना । आपका धन आपका नहीं, आपके बाप का भी नहीं । यदि आप उसका दूसरों के लिए उपयोग नहीं करोगे तो वह आपको खा जायगा । आप दूसरों के लिए उपयोग करोगे तो आपको मिलेगा । और यदि उसे खर्च कर डालोगे तो खाली रहोगे । यह मैं भिखारी हूँ इससे तुम्हें नहीं कहता । हम तो समर्थ हैं । हम तो बहुत धनवान हैं । जिसके पास धन होता है, वह भोग नहीं सकता । मैं तो भंगी के वहाँ से लेकर सेठ लोगों के साथ घूमा हुआ हूँ । और इससे मैंने तो देखा है कि भोग वह रोग है । यदि लक्ष्मी का

सदुपयोग करोगे तो अच्छा होगा। यदि उमंग से और भक्ति से खर्च नहीं करोगे तो खो दोगे और मुश्किल होगी।

सभी के प्रति सद्‌भाव

बोलने से पहले लाख बार विचार करें। सब सुनना परंतु किसी को कुछ कहना नहीं। बिना जरूरत का फालतू सुनना भी नहीं। फालतू सुनने से उसके संस्कार पड़ेंगे, उसे तुम्हें भोगना पड़ेगा। किसी की ऐसी बातें सुनना वह भी योग्य नहीं। ऐसा सुनने से हमें उसे भोगना पड़ता है। किसीकी निंदा करना नहीं, और सुनना भी नहीं। दूसरों के दोष मेरे सामने जो दिखाते हैं, उसे दंभी मानता हूँ। जो दूसरों के दोष देखा करता है, वह कमजोर है। सदैव स्वयं को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। संसारव्यवहार में गुण-अवगुण दोनों हैं। कोई संपूर्ण नहीं है। देहधारी संपूर्ण नहीं हो सकता। हमारे में गुण-अवगुण दोनों हैं। यदि गुण देखेंगे तो अच्छे गुण का धन मिलेगा। यदि अवगुण देखोगे तो उसके (अवगुण के) संस्कार पड़ेंगे। **यदि कोई खराव हो और उसको प्रेम से सहन करोगे तो वह भी तप ही है।** मेरी स्वयं की माँ ने मेरे पर कुछ भी करने को नहीं छोड़ा था। मैंने घर नहीं बंधवाया। मैंने उसे संसारी सुख-वैभव नहीं दिया और उसका कारण था। मेरी जीवन की भावना भिन्न थी। इससे मैं उस तरह नहीं जीया। इससे यदि कोई जीवदशा वाले हो तो उनके प्रति सद्‌भाव तो रखना ही। मेरी माँ ने मेरे बारे में पूरे आश्रम में सभी जगह बातें की थीं। फिर भी मैं ने मेरी माँ पर प्रेम विकसित किया है। मैं तो उसको पुकारता ही था। इससे **दूसरे के अवगुण पर जीत पाने के लिए उसके प्रति प्रेम रखना।** यदि माँ की तरफ तुम्हारा सद्‌भाव जागृत नहीं हुआ तो दंभ है। यदि वैसा हो तो मेरे पास आना ही नहीं

। जिसे माँ के प्रति प्रेम जागता नहीं वह क्या करेगा ? इससे यदि किसी को बुरा लगे तो न आये । मेरे मित्रों को यह सब ध्यान में रखकर कहता हूँ । मेरे गुरुमहाराज ने मुझे वचन दिया है, 'तेरे स्वजन तेरे दुश्मन हैं' परंतु मैं तो अभय हूँ । मैं तो उन सब के प्रति प्रेम रखता हूँ । परंतु कोई मेरे प्रति उतना प्रेम विकसित नहीं कर सके हैं । मेरे स्वजन उनके बुजुर्गों प्रति धीरे-धीरे प्रेम विकसित करते आये हैं । मैं सामान्य तौर पर बोलता नहीं । इससे मुझे तो प्रवचन के समय ही बोलने का डंडा उठाना पड़ता है । वैसे यदि बोलूं तो कोई मेरे पास आये नहीं ।

गुरु क्या करे और क्या न करे वह सोचना नहीं । गुरुमहाराज सब कर सकते हैं-यदि वे सच्चे हों तो । गुरु सच्चे हों तो उनके लिए कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः सब कुछ (करना, नहीं करना, अन्यथा करना) संभव है ।

गुरु का सामर्थ्य

मेरे गुरुमहाराज इतने समर्थ थे कि मैं यहाँ प्रार्थना करुँ तो वे वहाँ बोलते । मेरे मित्र वह सब लिख लेते, और मुझे पढ़ाया था । मेरे गुरुमहाराज ने मुझे साधना करवाई है । और मैंने जो-जो किया है उसके भी साक्षी हैं । गुरुमहाराज वैसा कब करें-या करावें ? गीतामाता कहती है कि सतत अनन्यभाव से एक पल भी अलग हुए बिना उसकी भक्ति करे । जीवन के एक-एक क्षेत्र का कर्म करते हुए भी उसका दिल भगवान में है । वैसे कि जो सर्व किसी में भगवान का ही महत्त्व रखे, उसका मैं सब संभालता हूँ । तब कोई दलील करता है कि आपने किसी का ऐसा क्यों कर दिया ।

आकाश से तारा झड़ता है तो पीछे प्रकाश की लकीर होती है । उस तरह चेतन में निष्ठा पाने वाली जो जो आत्मा होती हैं

कि जो उस तरह जीती हैं कि सब वैसे ही होने दे । (कभी किसी में अवरोध न करे ।)

प्रेमभक्ति से मालूम पड़े

यदि प्रेमभक्ति जागृत हो जाय तो मालूम पड़ जाय कि वह चेतना में जागृत है । उसके जीवन की एक प्रकार की कला होती है । ऐसे जीव को सद्गुरु उस पर कब्जा करके उसे आगे बढ़ाते हैं । परंतु उसके लिए एक शर्त है । उसे गुरुमहाराज के अलावा कोई आधार न हो । परंतु ऐसा किसी का होता नहीं है । लाख बार विचार करते होते हैं । गुरु कहाँ कहने आये हैं कि तू मुझे गुरु कर ? यदि उनके प्रति भक्ति हो तो उनके प्रति कितनी भावना रखता है उसका विचार कर । मेरे गुरुमहाराज ने कहा है कि सच्ची बात कहना । उपदेश देने की हमें खुजली नहीं है । यह एक ही बात कहता हूँ । जिसे जैसा करना हो वैसा भले करे, गुरु कर दे सही, परंतु जब सच्चे दिल से उसका काम करो तो । संसारव्यवहार में किसी के उपयोग में आते हों तो वह तुम्हारा काम करता है वैसा ।

भगवान का प्रेम

भगवान तो बहुत प्रामाणिक है । उसके समान कोई प्रामाणिक नहीं है । उसके समान कोई उसके जितना वफादार नहीं है । इससे भगवान तो उसके सिर पर ऋण कभी बाकी नहीं रखता । भक्त के सिर पर का ऋण वह कभी नहीं रखता । उसके जैसा कोई प्रेमी नहीं है । वह जितना प्रेम करता है, उतना कोई नहीं करता । मैं तो मेरे गुरुमहाराज की आज्ञा अनुसार सब को प्रेम करता हूँ । **हमारा तो अनेक लोग अनेक बार खून करते हैं । गरदन काटते हैं परंतु हम उसका विचार करते नहीं । जो हमारे लिए उलटा सोचता हैं उसे नुकसान है ।** सदा सद्भाव, सुमेल, प्रेम

रखो और भाइओं साथ रहते हो तो साथ रहो । व्यापार करो और झगड़ते रहो वह कैसे चलेगा ? जो कुछ करो, वह आनंद के लिए है ऐसा समझो। संसार, मातापिता, स्त्री-पुत्र सब आनंद के लिए हैं ।

उपनिषद में कहा है कि सब कुछ आनंद के लिए है, परंतु हम अपनी प्रकृति से हम सब पैदा करते हैं । इसके लिए भगवान का स्मरण करोगे तो सब ठीक होगा ।

तुम्हारे पास जो है, वह तुम्हारे बाप का नहीं है । यहाँ तुम्हारा कुछ भी लेना नहीं है । भीखुभाई ने यहाँ आश्रम बंधवाया है, उसके लिए उसे भी मुसीबत हुई है, उसे कुछ आसान नहीं पड़ा है ।

दोष मत देखो

जिन्हें यहाँ आश्रम में आना हो उन्हें भीखुकाका का दोष नहीं देखना है, उसे यहाँ सब व्यवस्थित रखना पड़ता है । जहाँ तहाँ थूंके, देर से आये उनको कहना पड़े, फिर भी उसे तो सब के प्रति प्रेम रखना चाहिए । किसीको किसी के अवगुण नहीं देखना चाहिए । 'दूसरों के अवगुणों को सहन करो और तुम्हारे अपने अवगुण देखो ।' आपको आपके परिवार में जो भी मिले हैं, उन सब के प्रति प्रेम विकसित करो । **ज्यादा सहन करो वही तप है । जितना तुम प्रेम रखकर सहन करोगे उतना तप ही है । उस तरह से तालीम मिलती है ।**

मैं यह सब एक को लक्ष्य में रखकर कहता हूँ, वह सब पर लागू होता है ।

इसलिए तुम्हें जो मिला है, वह दूसरों के लिए खर्च करो। कहाँ खर्च करना ? वह तुमको योग्य लगे वहाँ खर्च करो । यदि तुम्हें समझ में न आता हो तो समझ लो कि तुम स्वार्थी हो, दंभी

हो। जिसके साथ संसार में मिलते हो, उसके प्रति प्रेम रखो। सुमेल, सद्‌भाव रखो । मन में संताप मत करो । अन्याय को प्रेम से सहन करो । यदि वैसा करोगे तो तुम्हारी शक्ति बढ़ेगी । अगर प्रेम, सद्‌भाव, और सुमेल रखोगे तो तुम्हारा काम आगे बढ़ेगा । सामने वाले के लिए त्याग करना सीखो । ऐसा करने से तुम्हारे में एक ऐसी शक्ति प्रगट होगी कि उसकी तुलना में दूसरा कोई इस दुनिया में न आ सके ।

दिनांक : १२-१-१९६०

॥ हरिः ॐ ॥

१०. कर्म का महत्त्व

एक मेरे संबंधी मुझे कहते कि 'हरि को भजते' भजन तो सीधा सादा है, नहीं आलंकारिक भाषा या नहीं काव्य का अंश। फिर भी आप उसे क्यों विशेष गिनते हो ?

भजन : एक प्रतीक

पहले मुझे साधना के बारे में बिलकुल ज्ञान नहीं था। सिर्फ देशभक्ति का ध्यान था। प्रार्थना, भजन आदि में बिलकुल रुचि न थी। आश्रमों में दो समय प्रार्थना होती थी। उस समय प्रार्थना करते हुए मुझे दिल में होता था कि खाली-खाली प्रार्थना का कोई अर्थ नहीं। यदि मेरे में भाव न हो तो विद्यार्थी में कहाँ से आये ? इसलिए उस समय ऐसा लगा कि संचालक के रूप में प्रार्थना भाव से करनी चाहिए। मनुष्य की कर्म के प्रति प्रामाणिकता-सूझ प्रकट होनी चाहिए। ऐसी योग्य प्रकार की सूझ न प्रकट हो तो कर्म के प्रति तादात्म्य, निष्ठा, वफादारी प्रकट नहीं होते हैं। यथायोग्य रूप से वफादारी, निष्ठा प्रगट करने के लिए प्रभुकृपा से जीवंत प्रयत्न बनता। 'आश्रम भजनावलि' के भजन इस तरह निष्ठा से गाता और गवाता था। यह भजन भी उसमें गाया जाता। इस भजन को एक प्रतीक रूप से, बहुत ही स्पष्ट रूप से मानता था।

प्रह्लाद को बचाया, हिरण्यकशिपु को मारा, विरोधाभास दिखता है। हमारे में भी उसीप्रकार से बनता है, परंतु वह हमारे में रहा हुआ प्रह्लाद (सद्वृत्ति) जीवंत हो, तब तो भगवान हिरण्यकशिपु (असद्वृत्ति) को मार सके। परंतु वह प्रह्लाद प्रकट हो तो ही बने। दूसरे में विभीषण और रावण को रूपक रूप में आमने-सामने वर्णन किया है। विभीषण यानी सद्भावना-निष्ठावान।

वह असुर में ही जन्मा है और जीया है, परंतु उसे उसकी समझ प्रकट हुई थी। हम भी असुर में ही हैं, परंतु हमें समझ नहीं प्रकट हुई है। वह सचमुच मन में खटके रागद्वेषात्मक-द्वंद्वात्मक है उसकी वेदना अपार मन में खटके तो ही दूसरी स्थिति में प्रकट होने का हो। वहाँ तक वैसा नहीं बनता। संसारव्यवहार में काम करने का है। **जीवनविकास करना हो तो मिला हुआ कर्म छोड़ना नहीं है।** जो कर्म छोड़ता है, वह कायर है। उसमें (मिले हुए कर्म में) धैर्य, सहनशीलता, हिंमत, खमीर नहीं प्रकट होंगे तो **इस** मार्ग में भी कुछ नहीं होगा। इससे ऐसा होने के लिए प्रह्लाद और विभीषण जीवित होने चाहिए, परंतु वह कब होगा ? Intensity-तीव्रता प्रकट हो तो ही होगा।

एकरस होना

इन्द्रियों से देख सकते हैं। मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहंकार इन सब में भी चेतन के अंश हैं। वह न हो तो यह सब काम (देखना, सुनना, सूंघना, बोलना) नहीं हो सकता। ऐसी समझ न हो तो समझना कि उसके लिए अनुराग नहीं है।

कर्म में एकरागता प्रकट होनी चाहिए। बिल्वमंगल, सूरदास आदि थे। वे जगत की अधम से अधम स्थिति पर प्रकट हुए थे, परंतु उस स्थिति में भी ऐसे लीन थे कि दूसरे में मन जा नहीं सकता था। हम हमें मिले हुए कर्म से एकाग्रता, केन्द्रितता नहीं प्रगट कर पाते हैं। उसमें एकरस होना चाहिए। आठों पहर मनादि से जुड़े रह सकें तो ही, कुछ (ज्ञान) प्रकट हो सकता है। कर्म में ऐसे मग्न रहें तो योगक्षेम वहन करता है। गीता में ऐसा लिखा है। यदि ऐसे बन सकें तो सब होगा। (योगक्षेम वहन करने का) ऐसा मेरे मनमें प्रकट हो गया था।

लक्षण वही नाप

यदि कर्म में अनासक्ति, निर्लोभ, निरहंकार आदि प्रकट होते हैं तो ही ऐसी संभावना है । तो नरसिंह मेहता को हाथोंहाथ हार देने जैसा भी हो सकता है । मेरे जीवन में भी ऐसे प्रसंग बने हैं । जो सब हुआ है, वह गुफा में बैठकर नहीं किया । उसके साक्षी जीवित हैं । मेरे एक युवान मित्र परदेश गये । स्टीमर में मेरे द्वारा मेरे मित्रों पर 'जीवनसंशोधन' के पत्र लिखे थे वे उन्होंने पढ़े । उनको उसमें आनंद आया । वे उसके बाद के पत्रों की दूसरी पुस्तक प्रकाशित करते हैं । यदि भगवान का रटन-आकर्षण एकसा चला करे तो योगक्षेम चलाएँगे ऐसा दृढ़ विश्वास है । 'ध्रुव को दिया अविचल राज, स्वयं का कर के रखा रे' । 'ध्रुव' अर्थात् अचल गति । जो द्वंद्व में शक्य नहीं है । द्वंद्व में (Contradiction of life) विरोधाभासी आमने-सामने पहलू होते हैं । कई ज्ञान की बातें करते हैं । संबंध न हो तो वह सब बातें सुन लेता हूँ । जब ऐसे जीव के साथ निकट का संबंध हो, तब कहता हूँ कि यह बातें गले नहीं उतरती हैं । उसके लिए जो लक्षण प्रकट होने चाहिए वे दिखाई नहीं देते । **द्वंद्वातीत, गुणातीत स्थिति प्रकट हुई नहीं होती । ज्ञान की बातें करना वह तो गप मारना है । गुरुमहाराज ने कहा है कि निकट का संबंध हो तो सच बात कहना ।**

द्वंद्वातीत स्थिति में आठों पहर अचल स्थिति रहना वह असंभव है । थोड़े समय के लिए भजन करते हुए भावना प्रगट हो सकती है, परंतु वैसा प्रयत्न सतत एकसा करें तो वैसा होगा । जहाँ तक ऐसा आदर्श नहीं होता, वहाँ तक वैसा संभव नहीं है ।

योग्य भूमिका के लिए प्रयत्न करो

जब-जब समाज का पतन होता है, तब महापुरुष प्रगट होते

हैं । यह समय भावना के पतन का समय है । कठिन समय है। मैं तो इसे प्रपंचकाल कहता हूँ। ऐसे समय में हम जी रहे हैं, तब मनुष्य एकदूसरे के दोष बताते हैं । कई कहते हैं कॉंग्रेस ऐसी है, साले खा गये । मैं यह सब सुनता हूँ, तब दुःख होता है । कोई स्वयं के बारे में विचार करता नहीं होता । जो दूसरे का दोष निकालता है, वह स्वयं अपने को समझता नहीं होता । जो जीव स्वयं के दोष न देखे वह कभी ऊपर नहीं आ सकता । कॉंग्रेस वह भी हमारे स्वभाव के ही मनुष्यों की बनी हुई है । सरकारी तंत्र वह भी हमारे समाज का हिस्सा है । उसे अच्छी तरह चलाने के लिए समाज को ऊपर उठना पड़ेगा । समाज को उत्तम दशा में लाने के लिए कोई कुछ नहीं कर सकता । उसके लिए हमें ही प्रयत्न करना पड़ेगा । दूसरे का दोष निकालने प्रयत्न करें तो हमें ऊपर नहीं उठना है वैसा अर्थ होगा । हम सो रहे हैं । यदि हम प्रयत्न करते होते तो लक्षण अलग होते । सहन करना हो तो प्रेम से सहन करो । त्याग करो । दूसरों के दोष-अवगुण मत देखो । सब के लिए आदर, सद्भावना, सुमेल, प्रेम होने-टिकने के लिए भी भूमिका की जरूरत है । वह न हो तो कुछ नहीं हो सकेगा । नाम सतत लेने से फायदा होगा यह बात सच है, परंतु संसार में स्वच्छंदी होकर जीवदशा से वर्ताव करोगे तब फायदा नहीं होगा।

किसी के अवगुण मत देखो

भगवान के नाम का एकसा उच्चारण से ज्ञानतंतु पर अच्छा असर होता है । वैज्ञानिक रीति से सिद्ध हो सके वैसी हक़ीक़त है। संगीत में मुग्धता भरी लगन लगे वैसी अभिरुचि हो वैसे शब्द-स्मरण के उच्चारण से समता प्रकट होती है । और उसकी धारणाशक्ति मजबूत होती है । मनुष्य सुखी होना चाहते हैं, परंतु

वैसा दूसरों को कष्ट देकर उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए । अन्य को शांति कैसे हो, उस तरह बरतना चाहिए । अपना परिवार लो । जो व्यक्ति उस में विशालता, उदारता, सहनशीलता, त्याग न कर सके वह कुछ नहीं कर सकता है । व्यक्ति अपने पास दो रुपये होंगे तो किसी को दे सकेगा । जिस के पास कुछ नहीं हो वह क्या दे सकेगा ? परिवार में से ही ऐसी भावना को पैदा करनी चाहिए । कुटुम्ब में अनबन प्रकट करेंगे, झगड़ें, क्लेश, कलह करेंगे तो बाहर क्या सेवा कर सकेगा ? **घर से ही सेवा की शुरूआत कर, दूसरी जगह, कहाँ सेवा करने जाने वाले हो ? सुखी होना हो तो घर में ही भाई के साथ सद्‌भाव, ऐक्य प्रकट करो ।** क्या वह भी भावना नहीं है ? लोग कहते जरूर हैं परंतु वैसा किस तरह बन सके उसकी समझ नहीं है । कोई कहते हैं कि दूसरे बीच में न आये तो वैसा हो सकता है, परंतु हम जुड़े हुए होते हैं इसलिए बनने का है । आपस में प्रेम, ऐक्य, मेलमिलाप करना पड़ेगा । कई आते हैं । उनके परिवार में तो सुमेल नहीं होता । मैं मेरे परिवार में रहा हूँ इसलिए कहता हूँ कि एकदूसरे के अवगुण मत देखो । सच्ची हकीकत कहता हूँ । परिवार में देखा है । **यदि अवगुण देखोगे तो क्लेश, संघर्ष बढ़ेगा तो तुम्हारा भला नहीं होगा । संसारव्यवहार का सुख नहीं मिलेगा ।**

जगत मिथ्या नहीं है

ज्ञानपूर्वक कर के, सहनशीलता दिखाकर, अन्याय सहन करोगे तो वह तप है । प्रेम से, उदारता से वैसा करना चाहिए । मुझे अकेले को ही ऐसा क्यों करना चाहिए ? ऐसा सोचना नहीं । सामने वाला न समझे तो त्यागपूर्वक सहन करना चाहिए । बलपूर्वक

नहीं । यह तो उमंग का मार्ग है । **प्रेम से सहन करने को तैयार न हों तो भगवान के मार्ग पर प्रगति नहीं होती ।** संसारव्यवहार इसलिए ही मिला है । जगत मिथ्या कहने वाले को ही मैं मिथ्या कहता हूँ । यह नहीं होगा तो भगवान के मार्ग पर नहीं जा सकोगे । ऐसा कहेंगे वह नहीं चलेगा ।

समाज की मैंने भी बहुत सेवा की है । मैं भीख माँगकर खाता नहीं । मुझे अधिकार है । मैं कमाई कर सकता था, फिर भी प्रेमपूर्वक सेवा की है । इसलिए अधिकार है । सेना में सैनिक को भी बीस साल के बाद पेन्शन मिलता है । मैंने भी समाज की बीस साल उसी तरह सेवा की है । इससे समाज के पास से लेने का अधिकार है । कोई उपकार नहीं करता । मेरे गुरुमहाराज ने मुझे कहा है, 'तुझे सच्ची बात करनी है, उच्च बातें करना नहीं, क्योंकि लोगों की-समाज की वैसी भूमिका नहीं है । तुम ब्रह्म की बातें करो, परंतु उसके लिए लायकात नहीं है । उसके लिए न तो वैराग्य प्रचलित है या न तो अभ्यास ।' **वैराग्य यानी निर्लोभ, निरहंकार, निर्ममत्व, निरभिमानपन इन सब का 'सम टोटल' ।** ज्ञान की बातें गलत हैं । समाज आचरण से ऊपर उठता है । हम मित्र समाज में घसीटते हुए चलते हैं । बाढ़ में जिस तरह लकड़ियाँ घसीटती हुई बहती हैं, उसी तरह संसाररूपी समुद्र में लकड़ियों की तरह घसीटते जा रहे हैं । समाज में जीना वह क्या सेवा नहीं है ? न्योछावर-फनागिरी से सहन करना सीखो । **जब तक रागद्वेष कम नहीं हुए हैं, तब तक एक दूसरे के प्रति प्रेम, सहानुभूति, त्याग, उमंग प्रकट करना वह भी सेवा है ।**

मौनएकांत के संस्कार

ऐसा करते-करते स्मरण करें तो वैसा उठाव होगा वह अनुभवी समझ सकते हैं । सिर्फ बोलने से-उच्चारण से लाभ होगा वह कबूल ।

मौनएकांत में अंदर संस्कार उमड़ते हैं । व्यक्ति अपने को समझने लगता है । व्यक्ति अपने बारे में सोचने और आचरण करने में लग जाता है, इसलिए मैंने खड़ा किया–मेरे से बन सका । पहले का युग 'Cave culture' का था, जिस में हम बैठ नहीं सकते...**अंदर बिजली का बल्ब है, परंतु जलाना नहीं । जितना अंधेरा ज्यादा होगा उतने ज्ञानतंतु मजबूत बनेंगे । अंधेरे से नुकसान होता है, ऐसा डॉक्टर आदि कहते हैं वह ठीक नहीं है । अनुभव होता नहीं है ।** '**उस**' की कृपा से सन १९४१ से यह प्रयोग चला रहा हूँ । बीमारों को भी बिठाता हूँ । एक बार एक बीमार आया । उसने कहा पाव भर भी वजन बढ़ता नहीं है । वजन बढ़े वैसा करो तो बैठूं । मैंने कहा, हमारा प्रेम का संबंध है । मैं तो प्रयोगवीर हूँ । महात्मा गांधीजी ने सिखाया वे वैसे थे । मैंने इसमें बैठाया । उसकी स्वयं की ऊपर की मंज़िल में बैठने का हुआ था । ऐसी जगह भी नहीं थी । महात्मा गांधीजी ने सिखाया है कि जो हो उस से चला लेना । बेबसी का अनुभव नहीं करना । ईश्वर कृपा से उनका तीन सेर वजन बढ़ा । इसमें आश्चर्य नहीं है । हरएक का उस तरह बढ़ेगा ऐसा नहीं कह सकते । उसका बढ़ा यह बात निश्चित है ।

अंदर बैठने से मन की एक प्रकार की स्थिति रहती है, जो संसारव्यवहार में नहीं होती । हिंदू समाज में भावना है, परंतु वह सुषुप्त स्थिति में है । वह प्रकट हो तो अच्छा ।

'कर्मगाथा'

कर्म किस तरह करना उसका मुझे भान प्रकट हुआ । मैंने मेरे मित्र पर कविताएँ पत्ररूप में लिखी थीं, जो 'कर्मगाथा' के नाम से छपवाई हैं । रविशंकर महाराज तथा पू. ठक्करबापा ने उसमें लिखा है । रविशंकर महाराज पहचानते जरूर, परंतु उसमें इतना सारा

लिखा है जो वे ऐसे ही नहीं लिखते । मैंने काव्य सरलता से समझे जा सके वैसे लिखे हैं । महाराज को वह इतने मधुर लगे कि जेल में गीता पर प्रवचन करते उससे ज्यादा आनंददायक बताया । वे लिखते हैं, 'हेमंतभाई ने स्वयं न सुनाया होता तो ख्याल भी नहीं आया होता ।'

यदि हमारे में कर्म के प्रति भावना प्रकट हो तो योग्य प्रकार से कर्म करने का भान प्रकट हो । 'भक्त यानी तो मूर्ख' ऐसी लोगों में, समाज में मान्यता है, परंतु उसमें तो बुद्धियोग होता है । भगवान ही विवेकयुक्त बुद्धि देते हैं । भावना से बुद्धि जागृत होती है । वह जागृत हो तो उन्नति हो सकेगी । यह सब भावना की मूल नींव के बिना नहीं हो सकता । उसके लिए भी यह प्रयोग है । नामस्मरण लें, करें तो उच्चारण का फायदा होगा । परंतु सुमेल प्रकट करने की, समझ प्रकट करने की भावना प्रकट किये बिना चाहते हैं, उतना फायदा नहीं होगा ।

जीवन का एक पहलू नहीं है । समाज में भावना प्रकट करने के लिए ऐसे अनेक प्रयोग चल रहे हैं । एक समय ऐसा आएगा, हमारा समाज संस्कृति के उस शिखर पर पहुँचेगा । संस्कृति, भावना की दृष्टि से हम ऐसे उच्च स्थान पर पहुँच सकेंगे । ऐसा मुझे अचल विश्वास है । ऐसा दिखता है । अभी भले हम पतन की स्थिति में हैं । हम भाई-भाई के बीच सहनशीलता की भावना प्रकट हो ऐसी इच्छा रखते हैं ।

दिनांक : २-२-१९६०

॥ हरिः ॐ ॥

११. मौनमंदिर किस लिए ?

कर्मप्रारब्ध

साधु-महात्मा, भक्त लोगों के संकल्प कभी मिथ्या नहीं हो सकते । पढ़ेलिखे लोगों के गले यह बात नहीं उतरती है । पुराने समय के भक्तों या महात्माओं की बात जाने दें, परंतु महात्मा गांधी की जीवनकथा में है कि किसी एक शुद्ध आत्मा का संकल्प हो कि स्वराज मिल जाय तो वह सफल होगा । उन्होंने स्वयं १९४२ में 'Quit India' (भारत छोड़ो) संकल्प किया था तो पूरा हुआ। उनके आत्मीय जनों ने उनको ऐसा कहा था कि यह होगा या नहीं ? परंतु उनके स्वयं के दिल में जो उगा हुआ, वह उन्होंने सफल कर दिखाया । इसीतरह ऐसे महात्माओंने किसी जीव के बारे में संकल्प किया हो तो उस (जीव) की भूमिका को अनुकूल हो जाय वैसा वह संकल्प हो जायगा । गांधीजी ने संकल्प किया था, परंतु उसे योग्य भूमिका मिली नहीं । इसलिए स्वराज्य मिला परंतु संपूर्ण नहीं । यानी जिस तरह का स्वराज्य मिलना चाहिए था वैसा नहीं हुआ । हरएक को कर्मप्रारब्ध भी भोगना पड़ता है । महात्मा, संत, भक्तों आदि सब को प्रारब्ध भोगना पड़ता है । राम को चौदह साल वनवास, कृष्ण को पारधी से मृत्यु का योग भोगना पड़ा था ।

मौनमंदिर एक प्रयोग

मेरे गुरुमहाराज ने मुझे कहा था कि तुझे अनेक जीवों के साथ कर्म-प्रारब्ध भोगना है, वह अच्छा, बुरा और सब तरह का हो, परंतु जो जीव तुम्हें मिले उनके साथ इस तरह यह प्रारब्ध भोगना कि उन जीवों का भी साथ में कल्याण हो, परंतु तब मुझे इस बात की समझ न थी । आज भी नहीं है । इसलिए मैंने मेरे गुरुमहाराज को

पूछा था, 'किस तरह यह भोगना ?' तब उन्होंने मुझे इस तरह के कमरे बनाने के लिए कहा था । इसलिए वे सब जीव जो मिले उन सब के साथ इस तरह प्रारब्ध भोगा जा सके कि जिससे उन सब की उच्च गति हो । सब के साथ ऐक्य, प्रेम, सद्‌भाव के गुण विकसित करते उच्च गति हो और ऐसे होकर अंतर्मुखता विकसित करे तो उसका कल्याण हो । इस तरह **कोई जीव इक्कीस दिन इक्कीस बार बैठे तो वैसे जीवों का कल्याण होगा । यह निश्चित हकीकत है । मैं इसके लिए लिखकर देने को भी तैयार हूँ ।** एकांत में जीव स्वयं कैसा है, काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि उसमें जो भरे पड़े हैं वे जागृत होते हैं । बाकी कोई नये जीवों का 'Outlook' (दृष्टिबिंदु) भी बदलता है । उसे नयी-नयी समझ आती है और ऐसा कइओं को कई प्रकार के अनुभव हुए हैं । यह प्रयोग में इक्कीस वर्षों से करता आया हूँ ।

सच्चा तीर्थ

भागवती जीवन कठिन है, परंतु वह ऊपर चढ़ने का रास्ता है । जीवदशा वह पतन की दशा है । उसमें द्वंद्व की दशा में होने से अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य आदि करते होते हैं । इसलिए संसारव्यवहार में रहे हुए हमें अपना भान जागता नहीं । और मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् आदि को इस तरह का विचार करने का अवकाश नहीं मिलता है । उसके लिए यह जगह है । यहाँ जीव अपने विषय में तटस्थतापूर्वक सोच सकता है । आप हजारों रुपये खर्च कर के तीर्थ करने जाओ, परंतु वह मेरी दृष्टि व्यर्थ पैसे खर्च करते हो, क्योंकि आपको उस प्रकार की भावना प्रगट नहीं हुई है । जबकि यहाँ एकाग्रता, प्रसन्नता, जागृति विकसित होती है । जबकि अन्य कहीं ऐसा बनता नहीं । इसलिए यह सच्चा तीर्थ है । इस में जो स्नान करेगा उस का कल्याण होगा । यह मेरी जगह है, इसलिए

नहीं कहता हूँ, परंतु जीव ऐसा गलाडूब संसार में डूबा हुआ है कि उसे उस का महत्त्व समझ में आया नहीं है । गंगा पास में है, इसलिए उसका महत्त्व समझते नहीं हैं ।

संत और संसार

नरसिंह मेहता परम भक्त थे, परंतु उनकी ज्ञाति के और उनके गाँव के लोगों ने उन्हें चैन नहीं लेने दिया । निंदा, दोष-कथन, परेशान करते थे । यहाँ इस स्थान में बैठकर यदि साधना करोगे तो वह अवश्य फल देगा । यहाँ बैठे हुए जीवों ने दो तीन के अलावा-हर बार बैठना ऐसा तय नहीं किया ? भगवान के नाम का उच्चारण करने से किस तरह कल्याण होगा ऐसा अनेक लोग सोचते हैं, परंतु अनेक साधु महात्माओं और भक्तों ने ऐसा प्रयोग किया है और उबर गये हैं । ज्ञानेश्वर, तुकाराम, मीरां, रामदास आदि अनेक और वह भी हिन्दुस्तान के प्रत्येक भाग में-उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी भागों में और वह सिर्फ हमारे देश में नहीं, दुनिया के प्रत्येक भाग में हो गये हैं । **यह** शरीर जो तुम्हारे सामने बैठा है, उसकी अत्यंत गरीबी थी । मैंने चाहा होता तो कमा सकता, परंतु प्रेमभाव से देशसेवा में कूद पड़ा था । इसलिए हमारे पास कोई धन-दौलत नहीं है । २० वर्ष तक सेवा की है । हमारा हजार हाथ वाला हमारा भगवान चलाता रहता है, और हमें बहुत लोग जानते नहीं । सुरत में थोड़े लोग जानते हैं, परंतु वे भी पूरी तरह नहीं जानते हैं ।

देनेवाला भगवान

फिर यहाँ जो घाट है, वह लाख-दो लाख रुपये खर्च करके भी नये के समान नहीं हो सकता ऐसा है । यह बहुत पुराना है । परंतु हमने ऐसा संकल्प किया है कि उसे सुधरवाना । इसलिए

उसका काम शुरू किया है और उसका काम चल रहा है । गाँवों में से पैसा लेने की बात ही नहीं करते, क्योंकि सभी गाँवों का शोषण करते हैं । पैसे माँगने नहीं गया हूँ, फिर भी पैसे मिलते ही रहते हैं ।

मेरे साथ एक बी.ए. पास बहन संबंध में आई हैं और उससे उसमें भजन करने की शक्ति जागृत हुई । और उसने जो भजन लिखे, वे उसके पिताजी ने छपवा दिये । उसे मुफ्त बाँटने का सोचा था, परंतु मुझे लगा कि उससे यदि कुछ मिले और पैसे मिल जाँय तो अच्छा । उस तरह करने से रु. १२५०/- उपरांत रकम मिली । छोटी-सी किताब से अभी तक इतने मिले हैं और अभी मिलेगें । यह तो लावारिस काम है और ऐसे काम करना, वह पुण्य का काम है । पुराने समय में कुएं-घाट बंधवाते थे, परंतु अब ऐसा नहीं होता । कुरुक्षेत्र बहुत बड़ा तीर्थ है और यह घाट जबरदस्त है । यह घाट जो रिपेर हुआ है, इससे उसकी उम्र ५०-६० वर्ष बढ़ गई है । अभी उस पर रेलिंग कराना है । मेरे पास पैसे नहीं हैं । यह सब जानते हैं । फिर भी भगवान कृपा करके सब देते हैं ।

स्वरूप को पहचानने के लिए एकांत

अनेक भक्तों का उसने कसौटी के समय में संभाला है । यह तो अनेकों ने प्रयोग किया है । परंतु हम भले भगवान के न हो जाँय लेकिन हमारे में कैसे संस्कार पड़े हुए हैं, वृत्ति कैसी है, वह जानने के लिए भी एकांत की जरूरत सही । जीव अकेला हो, किसी प्रकार की दखल बिना या बिलकुल मुक्त वातावरण में हो, तब उसे उसका सच्चा दर्शन होता है । और उसमें हरएक को स्वयं को ही सच्ची समझ आती है, जो दूसरे को नहीं पड़ती । यह रचना मेरे गुरुमहाराज के हुक्म से बनी हुई है ।

चेतनाशक्ति का परिणाम

दूसरा, मेरे गुरुमहाराज ने एक हकीकत कही थी कि किसी को भ्रम में मत रखना । हरएक को सच्ची प्रयोगात्मक हकीकत कहना । किसी डाक्टर या हेल्थ ऑफिसर को पूछोगे तो यही कहेंगे कि इस तरह एकांत में रहना बहुत मुश्किल है । तो **इस मौनमंदिर के अंदर भगवान की कृपा से और गुरुमहाराज के आशीर्वाद से अंदर ऐसी चेतनाशक्ति रही है, जिससे अंदर रहा हुआ व्यक्ति आनंद से दिन गुजार सकता है ।** अंदर रही हुई चेतनाशक्ति के फलस्वरूप यह होता है । जेल में कठोर सजा वह 'Solitary cell' (एकांत कोठरी) और वह तीन ही दिन । उसे बहुत कठोर सजा कहा जाता है । बड़े डाक्टर, आरोग्य अधिकारी आदि लोगों का यह अभिप्राय है कि व्यक्ति को इस तरह बंद कर दिया जाय तो व्यक्ति पागल हो जायगा । ऐसे कैदी को डाक्टर प्रतिदिन जाँच करते रहते हैं और पागल हो जाय तो उसे तुरंत बाहर निकाल देते हैं । हमने यह भोगा है । उसमें तो जालियाँ भी होती हैं फिर भी उस एकांत से पागलपन हो जाता है ।

यह प्रयोग १६-८-५९ से चालू है । नडियाद में पाँच वर्षों से चल रहा है । कुंभकोणम् में आठ वर्षों से चल रहा है । नरोडा और नया डीसा में भी चलता है, परंतु कहीं कोई पागल नहीं हुआ है । इसलिए हम हमारे गुरुमहाराज के आशीर्वाद से कहते हैं कि आकर जाँचो । अंदर जो चेतनाशक्ति की मदद है, वह मदद आपको मालूम न पड़े उस तरह मिलती है । अरे, खुले जंगल में एकांत में रहना वह भी (उसे पचाना) बहुत कठिन है, परंतु यहाँ तो उस प्रकार की प्राणप्रतिष्ठा हुई है । जैसे मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा के बिना पूजा नहीं होती वैसे यहाँ भी प्राणप्रतिष्ठा हुई है ।

नामस्मरण का उठाव

भगवान का स्मरण और उसके उच्चारण से जीवन का विकास किस तरह हो ? भगवान का स्मरण करते-करते निराग्रही, निष्कामी, निरहंकारी, निर्लोभी इत्यादि होते जाँय तो नामस्मरण का उठाव अच्छा हो सकता है । बहुत बार उठाव नहीं होता, क्योंकि हम सदा आसक्त, काम, क्रोध, लोभ आदि वाले ही रहते हैं । इसलिए उसकी समाज में भी प्रतिष्ठा रहती नहीं और इससे समाज में ये दूषण अधिक देखे जाते हैं । मेरे साथ रहे हुए लोगों के लिए साबरमती आश्रम में एक संमेलन के समय मुझे शिकायत करने में आई थी । अभी भी सब वैसे के वैसे ही हैं, परंत मुझे कहना पड़ा कि सेवा में आये हुए भी वैसे के वैसे ही रहे हैं । शायद ही कोई जुगतरामभाई, नरोत्तमभाई, बबलभाई, महाराज जैसे उँगलियों पर गिने जा सकें उतने ही शुद्ध रहेंगे । प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे व्यक्ति कम ही रहेंगे ।

मौनएकांत के संस्कार

जीवन क्या है यह जानने की दृष्टि जागी नहीं है । इसलिए ये तो धीरे-धीरे सुधरेंगे और इसमें रहने से जो संस्कार पड़ेंगे, वे तो बहुत शक्तिशाली होंगे । और उससे उसका कल्याण ही होगा । यह संस्कार इतने इक्कीस दिनों के कभी फोकट नहीं जाएँगे । और अंदर रहकर जो प्रार्थना-भजन गाये उसके अनुकूल जीवन जीऐं तो हमारी भावना सदैव जीवित रहे । ऐसा अभ्यास करने से उसका प्रत्यक्ष फायदा दिखेगा । परंतु समाज में ऐसे व्यक्ति नहीं हैं कि जिनकी ऐसी दहकती भावना प्रगट हुई हो ।

जीवनप्रवाह का परिवर्तन

भगवान का स्मरण ऐसे प्रकार का साधन है कि घूमते-फिरते, खातेपीते या प्रत्येक कार्य करते हो सकता है । उससे ऐसी तो धुन

प्रकट होती है और वह ऐसे वेग से आगे बढ़ती है जैसे कि नदी में प्रचंड बाढ़ आती है, तब उसका प्रवाह बदल जाता है वैसे ऐसी भावना की प्रचंड बाढ़ जब प्रगट होती है, तब जीवन का भी प्रवाह बदल जाता है । यह एक बिलकुल सच्ची हकीकत है । नदी में तो ऐसा होता है वह देखते हैं और जीवन में भी ऐसा होता है ।

साधन किस लिए ?

और ऐसी भगवान की प्रचंड बाढ़ प्रकट करने के लिए साधन की जरूरत है । यह भक्ति का मार्ग आनंद का, प्रसन्नता का है और न्योछावरी का मार्ग है । **हमारे मन में जो अनेक प्रकार के विचार-वृत्तियाँ जागती हैं तो समझना कि अभी पूरी भक्ति प्रकट नहीं हुई है ।** मेरे साथ जो जुड़े हुए हैं उनको तो मैं सुनाता हूँ, परंतु दूसरों की बातें सुन लूँ । भगवान की एक-सी अखंड बाढ़ जब मैं देखूँ तब मैं धन्य होऊँ और वह भी धन्य हो । इससे मेरे साथ जुड़े हुए व्यक्तिओं की बात पर से मैं उन्हें पहचान सकता हूँ । यह तो न्योछावरी का मार्ग है । कोई अपवादरूप से जीव प्रह्लाद, ध्रुव, रामकृष्ण, मीरां, तुकाराम हो सके हैं । वे सब तो पिछले जन्म में साधना किए हुए जीव होते हैं और उन्होंने साधना की होती है । और जब ऐसी साधना निमित्त कारण से ज्वालामुखी की तरह फूट निकलती है, तब वे सब हमारे सामने दृष्टांत रूप से होते हैं । रामकृष्ण, श्रीअरविंद, रामदास, कृष्ण इत्यादि ने भी निमित्त रूप से साधना की है ।

कुटुम्ब-पहला कदम

हमारे में से सब भक्ति की बड़ी-बड़ी बातें करें, वह योग्य नहीं, क्योंकि बढ़ाचढ़ाकर बातें हैं । इससे इस संसार में जो जीवों के साथ कर्म-प्रारब्ध भोगना होता है, उनके साथ प्रेम, सद्भाव,

सुमेल से व्यवहार करें । द्वंद्वातीत या गुणातीत हुए बिना कभी भी चेतन का अनुभव नहीं होगा । भाईयों या कुटुंबिओं के लिए यदि उदार भाव से त्याग करने का विकसित नहीं कर सके तो दंभ बढ़ेगा। यदि पहला कदम नहीं चढ़ें तो आगे कैसे जा सकेंगे ?

मौनएकांतवासी को विनती

फिर, जो अंदर बैठे हुए हैं, उनसे मेरी विनती है कि जिन जीवों के साथ हम जुड़े हुए हैं, उनके साथ प्रेम से, त्याग विकसित करके हम सहन करें और **वह भी प्रेम से । तो ही उससे श्रेय होगा । सहन करने का तो सब को होता है, वह यदि प्रेम से करेंगे तो हमारा खुद का कल्याण है । यदि मन मारकर करेंगे तो हम ज्यादा दुःखी होंगे । जहाँ तक संसार से हम जुड़े हुए हैं, वहाँ तक ऐसा सहन करना आये तो प्रेम से सहन करें तो वह भक्ति है ।** और ऐसा भोगना पड़े तो हम ऐसा समझें कि हमारा यह कर्म-प्रारब्ध भोग रहे हैं । इससे यदि हमें सुखी होना हो तो यह सब प्रेम से सहन करना । इससे हम स्वयं इस तरह सुखी या दुःखी होते हैं । कोई शिकायत करे कि मुझे ही सहन करने का ? तो वह ठीक नहीं है । जब **सहन करने को आये तो मन को समझाना कि यह तो कर्म-प्रारब्ध है ।** समाज अनेक व्यक्तिओं से बना है । इससे एकदूसरे को एकदूसरे के लिए त्याग करना ही पड़ेगा, तो ही समाज उन्नति करेगा । त्याग से जीवन उन्नत होता है । यदि प्रेम से त्याग करेंगे तो जीवन ऊपर उठेगा, परंतु जबरदस्ती से त्याग करते हैं, इससे हमें उससे जो शक्ति मिलनी चाहिए वह नहीं मिलती । त्याग करने का आये तब जिसके दिल में प्रेम का उत्साह प्रकट हो उसका जीवन धन्य है । सहन करने का आये यह सब सहन करना ही पड़ेगा । इसमें किसी का छुटकारा

नहीं है। इससे समाज में हैं वहाँ तक सहन करने का और त्याग करने का रहता है। तो उसे यदि जबरदस्ती से करेंगे तो जीवदशा में ज्यादा से ज्यादा रहेंगे और दु:खी- दु:खी हो जायेंगे और उलटे गड्ढे में गिर पड़ेंगे। दूसरों के बारे में सोचा करेंगे तो जानबूझकर दु:खी होंगे, क्योंकि उसके ऐसे संस्कार पडेंगे, तो मैं तो कहता हूँ कि ऐसा गलत धन क्यों इकट्ठा करते हो ? उससे तो नुकसान ही होने वाला है। त्याग करने का और सहन करने का आये तो उसे प्रेम से सहन करो और त्याग करो। और ऐसा सहन करने का और त्याग करने का खोजने जाना नहीं है, परंतु जब निमित्त आये तब प्रेम से सहन करो। और ऐसा मानना कि उस जीव के साथ हमारा ऐसा प्रारब्ध है, इससे उसे प्रेम से भोगें। जो दूसरों के दोष देखता है, वह अज्ञानी है और स्वयं ज्यादा दु:खी होगा, संताप पाएगा। उलटा हमें ऐसा समझना चाहिए कि हमारे कारण यह सब होता है। और हम दूसरों के साथ प्रेम रखें तो ऐसा जीवन प्रकट होगा, ऐसा आनंद प्रकट होगा कि उसकी कोई बराबरी नहीं हो सके। परंतु ऐसे आनंद भोगने के लिए समाज में किसी की तैयारी नहीं दीखती।

लक्ष्मी का सदुपयोग

लक्ष्मी की संसारव्यवहार में जरूरत है। लक्ष्मी माया है, ऐसा कहने वाले गलत है। लक्ष्मी शक्ति है। उसका सदुपयोग करना चाहिए। यदि उसके साथ व्यभिचार किया तो वह तुम्हें गिरायेगी। **लक्ष्मी का जो दुरूपयोग करता है वह पापी है। वह गिरेगा। जो उसका सदुपयोग करेगा उसकी लक्ष्मी टिकेगी।** प्राचीन समय में सात पीढ़ी तक लक्ष्मी टिकती थी, परंतु आज वैसा नहीं है। वह पवित्र शक्ति है। उसे तुम भगवान के काम में खर्च करो।

तुम्हारे अकेले के स्वार्थ के लिए खर्च करोगे तो वह पतन का कारण होगा । कोई ऐसा कहेगा कि **मोटा** को सब कुछ हजम कर जाना है, इससे ऐसा कहते हैं, परंतु मेरा तो हजार हाथ वाला भगवान है । मेरे स्वार्थ के लिए मैं बिलकुल नहीं कहता। लक्ष्मी भगवान स्वरूप है । उसे सही काम में खर्च करें । **भगवान का भजन वह सद्‌भावना पैदा करने के लिए है, नहीं कि नर्क में रगड़ाने के लिए ।** दो बातें एक साथ नहीं हो सकतीं । इससे धीरे-धीरे इन दो चीजों को करना : सहन करना और त्याग करना । ऐसा करेंगे तो जीवन उन्नत होगा ही । इससे संसार-व्यवहार में सहन करने का और त्याग करने का तो आएगा ही । किसी से सहन या त्याग करने का होगा नहीं, वह तो हमे स्वयं ही करना है । इसमें दूसरे का दोष मत देखो । शांति रखकर उद्वेग किये बिना प्रेम से सहन करने का प्रयत्न करें ।

दिनांक : २३-२-१९६०

॥ हरिः ॐ ॥

१२. संसारव्यवहार

शब्द के अनेक अर्थ

जिसे अनेक प्रकार के स्वार्थ, इच्छा, लालसा हो वह अर्थार्थी कहलाएगा । जिस तरह बालक माँ के पास किसी चीज की माँग करे और वह खुश हो तो ला दे, उसीतरह भक्त के लिए माँगें । शब्द के अलग-अलग अर्थ होते हैं, यह संस्कृत की खूबी है । दूसरी अनेक भाषाएँ हैं । मुझे किताबों का ज्ञान नहीं है, परंतु कालिज में पढ़ते थे, तब प्रोफेसर कहते थे वह कहता हूँ । एक दिन 'गो' शब्द के इतने विविध अर्थ करके बताये थे । आज मुझे वे सब याद नहीं हैं, परंतु उस बात का स्मरण है । गाय, भावना-वृत्ति, जिस से अमृत मिलता है, गाय के द्वारा दूध रूपी अमृत मिलता है आदि आदि अर्थ बताये थे । संस्कृत में एक शब्द में से अनेक अर्थ होते हैं, दूसरी किसी भाषा में वैसा नहीं है । संस्कृत ऐसी ऊँची भावना युक्त जीवंत भाषा है । उसका अध्ययन करने वाले सिर्फ काशी के पंडित ही नहीं हैं । वह फिर दूसरी ही हकीकत है । वे जर्मनी में जीते हैं ।

भगवान समक्ष बात करो

मुझे मुनि जिनविजयजी ने कहा है । मैंने उनके पास काम किया था । वे विद्यापीठ में आये थे । गांधीजी ने उनको बुलाया था । उन्हें पुरातत्त्व की लायब्रेरी बनानी थी । वे जर्मनी में रहते थे । अभ्यास करने के लिए स्वयं पकाकर खाते । यह उनकी कही हुई बात है । यह तो हम अलग बात पर आ गये, मूल बात पर आयें । हम जीवदशा वाले भले रहें, परंतु अर्थ-धन के लिए भी

तू मेरा भक्त हो जा । तक़्लीफ़ को भगवान के आगे पेश करो, आत्मनिवेदन करते रहो । वैसा करते-करते अंग्रेजी में जिसे 'साईकिक कोन्टेक्ट' (चैतसिक संपर्क) कहते हैं, वह होगा । यह तो मानसशास्त्र द्वारा स्वीकार की जा सके वैसी बात है । जैसे मित्र के आगे बात करने से यदि हमारा मन हलका होता हो तो वैसी बात प्रेम से, उमंग से करते हैं । उस तरह सुखशांति प्राप्त करने के लिए भगवान के आगे बात करो । जिस तरह मित्र को बात करते हो, उसी तरह भावना से-उमंग के साथ भगवान के आगे बात करो तो हलकापन-प्रसन्नता जरूर मिलेगी । संसार में प्रसन्नता की खूब जरूरत है । संसार का अनुभविओं ने बहुत अलग-अलग तरह से वर्णन किया है । कइयों ने संसार को अमृतमय कहा है । हमें यह बात गले उतरती नहीं है । उसे गप मानते हैं । दुःख, शरीर और मन की पीड़ा, क्लेश, संताप आदि ने घेरा डाला हुआ है और इससे एक प्रकार के अंधे हैं । व्यक्ति अंधा हो और हाथी के कान हाथ में आने पर उसे सूप जैसे लगे, किसीके हाथ में पूँछ आये तो कहे कि थोड़े बाल वाला है । सूंड, पैर हो वैसा कहे । जो जिसके हाथ में आये वह उस प्रकार का वर्णन करता है वह सच है, परंतु वह समग्र सत्य नहीं है । उसी तरह भगवान पतितों के उद्धारक हैं ही वैसा मुझे लगता है, परंतु वह सिर्फ पतितों का उद्धारक ही नहीं हैं । उसे किसी बात की सीमा, किसी बात का बंधन नहीं है । मेरे कहने का मतलब यही है कि ऐसा जो चेतन है उसे अर्थ के लिए भी कहते रहो । दिन में ५०-६० बार ऐसा (दुःख-तकलीफ के कारण) हो । उस समय भगवान के आगे निवेदन करते रहो । जहाँ तक मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् भगवान में लीन नहीं हो गये होंगे वहाँ तक इस प्रकार बनना है । जिसकी बुद्धि ब्रह्ममय बन गई हो उसे संसार अमृततुल्य लगेगा ।

अनुभवी कब पहचाना जाता है ?

कोई इंजीनियर हमारे पास आकर कहे कि ऐसा करो, वैसा करो, वह हम तुरंत ही मान लेते हैं । वैसे कोई डाक्टर आकर कहे, दर्दी को टाईफॉईड है, तब कोई शक करते नहीं, क्योंकि उसके पास डिग्री है, M.B.,B.S. की डिग्री ली है, दुकान शुरू की है, इससे वह मानना पड़े । परंतु अनुभवी कुछ कहे वह जानकार है उसका सबूत क्या ? काशी में पंड़ित अनेक हैं । **'विद्वान सर्वत्र पूज्यते ।'** विद्वान को पहचान सकते हैं, परंतु अनुभवी को नहीं पहचाना जा सकता । हमारे गुरुमहाराज कहते थे कि विद्वान का सन्मान करना । अनुभवी हो वह तो गाली भी दे दे । उसे समझ नहीं सकते । तुम उस कक्षा तक पहुँचो और वह भी समय निमित्त बने तब समझ सकते हो । परंतु यह सब पंचायत टालनी हो तो बुद्धि को प्रज्ञा स्वरूप बनाओ । जहाँ तक बुद्धि उस प्रकार की हो नहीं, वहाँ तक सब अस्तव्यस्त रहेगा ।

भगवान का नाम किसलिए ?

अनुभविओं ने अलग-अलग प्रकार से साधना की है । जैसा जैसा समय उस उस प्रकार के साधन लिए हैं । हमारे ही देश में नहीं, परंतु सभी जगह ऐसा हुआ है । बापदादा का ख़ज़ाना काम नहीं आये । तू साधन कर । रागद्वेष से ऊपर उठो । कई विद्याएँ ऐसी हैं कि जिससे अहम् बढ़ता है । हमें तो एक ही बात ध्यान में रखने की है कि अहम् कम करना है । अहम् यानी 'degraded from of chetan' चेतन का नीचे गिरा हुआ स्वरूप । चेतन जल में जलरूप में, तेज में तेजरूप से, वायु में वायुरूप से है । मल, विक्षेप और आवरण के कारण हमारा चेतन वैसा होता है, परंतु चेतन को उसके योग्य पट में बहाना हो तो उसके योग्य (चेनल)

नहर खोदनी पड़ेगी । वह तब होगा जब आत्मा के प्रति अभिगम होगा, परंतु उसके लिए बुद्धि रागद्वेष से पर होनी चाहिए। परंतु वह तुरंत नहीं होगा। इसलिए कहा है कि भगवान का नाम लो । हिन्दू धर्म में नहीं परंतु दुनिया के सभी धर्मों में जप पर भार दिया है और सच्चा आधार माना है ।

मुश्किल दूर कैसे हो ? नाम वह common factor सामान्य अवयव है । सभी धर्मों का रहस्य उसमें ही है । हम पर सुख-दुःख, तकलीफें, समस्यायें आयें तब बुद्धि उससे ढक न जाय ऐसा भगवान को कहना रखो । उस समय स्मरण करो, भजन करो, सत्संग करो । आप उसमें भटक गये तो तकलीफों का समय बढ़ेगा। पाँच मिनट के बदले पाँच घंटे, पाँच दिन तक रहे, परंतु बुद्धि को उससे विमुख करो तो रास्ता तुरंत ही मिल जायगा । उस समय सत्संग, स्मरण, भजन करें । **बुद्धि को उसमें लाना नहीं, इससे हल मिल जायगा ।**

धर्म के लक्षण

महात्मा धर्म की बात करते थे । धर्म का प्रत्यक्ष प्रमाण क्या ? **जहाँ धर्म हो, वहाँ पराक्रम, शौर्य, पौरुष, उदारता और सहिष्णुता के गुण प्रकट होने चाहिए ।** एक दूसरे के प्रति, सद्भाव, प्रेम जागना चाहिए। वह अभी है क्या ? वह तो रूढ़ि के रूप में है । सुप्त अवस्था में पड़ा हुआ है । धर्म जीवित होता तो हम कायर होते ? भाई-भाई के बीच क्या अनबन होती ? दुश्मनी होती ? अमुक पुरुषों में वैसे लक्षण हैं, परंतु वैसे लाखों में कोई हो ।

ब्रह्म सत्य

हमारे में अलग-अलग अनेक मत हैं । धर्म तो परस्पर में झगड़ा करवाता है । यह मेरा सही और तुम्हारा गलत । धर्म तो

रागद्वेष बढ़ाने का काम करता है । इससे यह सच्चा धर्म नहीं है। हमें धर्म की बात छोड़ देनी है । **गुरुमहाराज ने कहा है कि जो कोई तुम्हारे पास आये तो काम किस तरह से अच्छा हो, वह कहें ।** ब्रह्म की भूमिका की बात करने से कुछ नहीं होगा, जिसे जो चाहिए, वह दें । जगत मिथ्या बात करता है, परंतु तुम व्यवहार तो चलाते हो तो जगत मिथ्या क्यों ? ब्रह्म सत्य होता है परंतु वह चेतन की अपेक्षा से Relatively । भले सत्य हो, परंतु वैसी बात करने का कोई अर्थ नहीं है ।

अनुभविओं को कैसा पहचानें ? वे तो उनकी वाणी से पहचाने जाएँगे । वे न पहचाने जाँय वैसा कुछ नहीं है । जौहरी हो तो हीरे की जात पहचान सके । जौहरी बने और अभिरुचि हो, तब कुछ जान सकते हैं । ऐसों के प्रति सद्‌भाव रखे तो भी चलेगा । तो भगवान का स्मरण करो । उलझन, समस्या, तकलीफ के समय ढंक न जाकर स्मरण-प्रार्थना इत्यादि करो, वह (Practical) व्यावहारिक उपाय है । कोई कहे कि काम करते स्मरण कैसे होगा ? मैं तो कहता हूँ कि मनमें करने का है । चाहे काम करते हों, बैठे बैठे भी वह करना, तो तकलीफ का अवश्य समाधान हो जायगा ।

व्यक्ति के साथ व्यवहार

संसारव्यवहार में कर्म तो करने हैं । और कर्म के कारण व्यक्ति के साथ जुड़े रहेंगे, तो वैसी व्यक्ति के प्रति मिठास से व्यवहार करना । मिठास दंभवाली नहीं होनी चाहिए, दिल से होनी चाहिए । तुम्हें काम तो चलाना है, वह व्यक्तिओं से होगा या दूसरों से होगा ? कर्म तो जड़ है, परंतु व्यक्तिओं के प्रति प्रेम, उदारता, सहानुभूति भरा अभिगम रखेंगे तो कर्म उत्तम होगा । उस समय नाराज होकर गुस्से से बात करोगे तो काम नहीं होगा । उल्टे काम में खलल

पहुँचेगी । व्यापार में भी यह प्रयोग करके देखो । भले उसका परिणाम जल्दी न आये । वह मार्ग कड़ा है । किसीने गुस्सा किया और तुमने सामने गुस्सा किया तो नहीं चलेगा । संसार-व्यवहार में नम्रता रखेंगे तो अभिरुचि प्रकट होगी । इसलिए कर्म करते-करते जुड़े हुए व्यक्तिओं के साथ रुआब, अभिमान, क्रोध करना छोड़ दो । त्याग करने का आये तो त्याग करो । हमारे लिए इतना भी काफी है । ऐसी भावना से जीयेंगे तो चेतन के प्रति मनोवृत्ति विशेष होती जायगी, मन ज्यादा शांति वाला, प्रसन्नता वाला होगा । अशांति रखोगे तो नहीं होगा । और संसार में हम कर्म से अलग हो नहीं सकते । कर्म उत्तम से उत्तम तब होगा जब प्रेम, सद्‌भाव, सहानुभूति से व्यवहार करोगे, अन्यथा काम बिगाड़ोगे । तकलीफ-उलझन आये तब व्याप्त न होकर मन में स्मरण करो । फिर जो स्थिति हो उसका अनुभव करो । नाम की महत्ता की बात मैं नहीं करता, मैं तो मानसशास्त्र (साइकोलॉजिकल) की दृष्टि से बात कहता हूँ । हम एक प्रवृत्ति में से दूसरी प्रवृत्ति में जाते हैं, तब पहली बात हमारे सुषुप्त मन (Subconscious) में पड़ी होती है । वह दूसरी प्रवृत्ति में जाने से अपने आप सुलझ जाती है । इसलिए मुश्किलों में उससे व्याप्त न होकर उससे विमुख होंगे तो प्रश्न हल हो जाएँगे ।

संसार में अभ्यास

हमें संसारव्यवहार में जीना तो है-तो क्यों दुःखी होकर-क्लेश पाकर जीना ? अशांति में क्यों रहना ? सिर काटकर रख देना भी हम से नहीं होगा । इसलिए यह नाम लेते-लेते एक ऐसे प्रकार की भूख जागेगी कि हम सिर कटवाने को भी तैयार हो जाएँगे । संसार में ऐसा होता है । जब गरज प्रगट हो तब सिर रख देते हैं । भगवान का नाम लेना और उसे लेते-लेते ऐसा समय आएगा कि

अभिरुचि जागेगी । और अभिरुचि जागेगी इससे अभ्यास होगा। **अभ्यास यानी शास्त्रार्थ नहीं ।** अभ्यास और वैराग्य से भगवान को प्राप्त करोगे, ऐसा गीतामाता ने कहा है । अभ्यास और वैराग्य का अर्थ पहले मुझे समझ में नहीं आता था, परंतु ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मुझे मिल गया । मैंने अनेक महात्माओं को सुना है, किन्तु हल खुद खोजा है । स्वयं ही ब्रह्म स्वरूप है । उसका आधार कहाँ लेना ? यह विचार करेंगे तब **अनासक्ति, निर्ममत्व, निर्लोभ, निरहंकार इत्यादि प्रकट हो उसे वैराग्य कहा जायगा ।**

संसार असार नहीं है

जगत मिथ्या है ऐसा कहते हैं, उनको कहता हूँ कि संसार में व्यवहार करना है तो वैसा कहने का क्या अर्थ ? वे कहते हैं कि हम कामना, लोलुपता, मद, ईर्ष्या वाले हैं । चाहे जैसे हैं वैसे हैं, परंतु पास में भगवान बैठे हैं उनको प्रणाम करके कहता हूँ- शास्त्र पढ़कर नहीं, अनुभव से कहता हूँ कि उलझन में मत रहना, ऐसा आचरण व्यवहार करो और स्मरण करो । और **आशा, तृष्णा, लोलुपता इत्यादि कम होते जाँय उसे अभ्यास कहा जायगा ।** चेतन है ही, परंतु वह जीवदशा की चेनल में बहता है । इसलिए चेनल बदलो । यह चेनल बदले और अभ्यास करते ऐसे हो जाँय तो वैराग्य आये । संसार असार है ऐसा लोग कहते हैं, परंतु यदि रस न हो तो मनुष्य पल भर भी नहीं जी सकता । पृथ्वी के किसी भी देश के कोई भी मानसशास्त्री के अभ्यासी को पूछो ।

दिनांक : ७-६-१९६०

॥ हरिः ॐ ॥

१३. भावना का महत्त्व

प्रभु कब सँभाले ?

'हरि को भजते'-भजन में प्रेमलदास भक्तकवि निरा पक्षपात करते हैं । प्रेमलदास ही नहीं परंतु गीतामाता ने भी कहा है कि भगवान को उसके भक्त प्यारे है । वह दूसरे किसी का काम नहीं करता, भक्त का तो जरूर करता है । उसने प्रह्लाद को उबारा है, दूसरे को नहीं । संसारव्यवहार में भी अपने-आप (प्रेम हो वहाँ) एकदूसरे को बचाने जाते हैं । हमारी भगवान में ऐसी स्थिति हो जाय, तब भगवान को कहना नहीं पड़ता । जहाँ तक कहना पड़ता है, वहाँ तक प्रेम कम है, ऐसा कहा जायगा । जब उसमें लीन हो जाते हैं तब अपने-आप काम करता है । गरुड़ पर बैठ कर आएँगे ऐसा कहते हैं, उसका अर्थ यही है ।

उसने विभीषण को राज्य दिया, क्योंकि वह भक्त था, रावण को मदद नहीं की है । हमारा भगवान तो वैभवशाली है, अनेक प्रकार की समृद्धि वाला है । पृथ्वी पर सुराज्य होगा, वहाँ भगवान समृद्धि अवश्य लाएँगे । जहाँ नम्रता है, वहाँ गरीबी नहीं है ।

भावना से कर्म

नरसिंह मेहता को हार हाथोंहाथ दिया । आज के समय में भी ऐसा होता है । दहकता नसीब जोर करता हो वहाँ तो खेत में जाते-जाते ठोकर लगे और चरु मिलता है । गुरुमहाराज ने मुझे आज्ञा की है कि हक़ीक़त सिद्ध न हो वैसी हक़ीक़त कहना नहीं । जब किसी के प्रति प्रेम हो जाय तो उसका दोष नहीं दीखता । भक्त का यह प्रत्यक्ष लक्षण है । **आपको यदि सच्चा प्यार हो तो दोष प्रति उपेक्षा होगी यह प्रत्यक्ष लक्षण है ।** जिसके जीवन में भावना प्रकट

नहीं होती है, उससे कुछ भी नहीं होता। परंतु भावना कहाँ से आएगी ? भावना वह प्रकृति-स्वभाव से पर की कक्षा है यह एक हक़ीक़त है। प्रकृति, स्वभाव, द्वंद्व और गुण से पर की स्थिति है। इसलिए भावना के विकास के लिए ऐसी प्रवृत्ति लेनी चाहिए जो कि द्वंद्वात्मक नहीं होनी चाहिए, चेतन-प्रति की प्रवृत्ति ऐसी प्रवृत्ति है। उस प्रकार की भावना विकसित करने के लिए उस प्रकार का आधार लेना चाहिए। भावना प्रगट करने के लिए सतत कर्म करना चाहिए, हम कर्म करते हैं, परंतु हेतु का भान नहीं रहता है। हमारे में चेतन रहा है परंतु-awareness-सतत जागृति प्रकट हुई नहीं है। भावना बिना गुणशक्ति का विकास नहीं होता है। इससे आनंद भी नहीं आता है। भावना से किये हुए कर्म से अनेक प्रकार का सुख पैदा होता है। हमारी शान्ति और प्रसन्नता बनी रहती है। भावना हो तो अकेले कर्म करते-करते भी यह सब प्राप्त हो सकता है।

भावना ही आधार

उसके लिए ऋषिमुनिओं ने जबरदस्त क्षेत्र खोला है, यह हकीकत है। हमारी संस्कृति हम भूल गये हैं। आर्य संस्कृति वह चेतन है। आर्य प्रजा में आर्य प्रजा साधारण रूप से हिन्दू समाज कहो-प्रकृति का चेतन कहो, उसका भाव जागृत नहीं है। ऋषि-मुनिओं ने तो यह कहा है। **उनको लगा कि लीक से कर्म करना उसका नाम जीवन नहीं,** जीवन उच्च क्षेत्र की हकीकत है। जीयेंगे तब मालूम पड़ेगा। अंदर डूबो उसके बाद कहो। वह हक़ीक़त के परिचय में आये बिना पता नहीं लगेगा। परिचय विकसित किये बिना बोलें तो व्यक्ति को ऐसा लगेगा कि गप मारता है। प्रयोग किये बिना बोले उसका अर्थ नहीं है, भावना प्रयोग किये बिना समझ में नहीं आती। सब को ऐसी जागृति नहीं होती।

ऋषिमुनिओं को लगा होगा कि भावना जागृत होती होगी तो साधना की जरूरत नहीं है, परंतु ऐसी भावना कम होगी । **कर्मकांड के माध्यम** (medium) **का आधार लिया । उसके आधार से उत्कटता न टिकी, तब हमारे लोगों ने मूर्तिओं की स्थापना की ।** समाज की भावना टिक सके उसके लिए यह साधन है । भावना के बिना गुणशक्ति नहीं है ।

भावना कैसे जागृत होगी ?

लोग पढ़ेलिखे अवश्य हैं, परंतु सचमुच शिक्षित नहीं । शिक्षित समझे, हमें समझने की भी मनाई ! मन, बुद्धि, चित्त को ताले लगाये हैं ! हम स्वयं हजार आँख वाले, हजार हाथ वाले हैं, यदि हम चाहें और पक्का निश्चय करें तो जो चाहें वह कर सकते हैं । महात्मा गांधीजी ने अपने जीवनवृत्तांत में लिखा है, उन्होंने स्वराज्य लेने का पक्का निश्चय किया था और स्वराज्य लिया भी सही ।

हमने तो मंदिर जाना भी बंद कर दिया । जैसे जैसे भावना कम होती गई वैसे-वैसे साधन स्थूल होता गया । यह भावना मौन में बैठने से, २१ दिन तक सतत नामस्मरण करने से होगी । बाहर तो स्वयं में रही हुई अनेक प्रकार की विकृति इत्यादि का, स्वयं के बारे में विचार करने का अवकाश नहीं है । यहाँ कोई किसीको देखता नहीं है । इस तरह विचार करने का अवकाश मिलता है । यहाँ स्वयं को समझने का प्रयत्न करेंगे तो स्वयं का दर्शन होगा । जीवन में भावना है, सच्ची समझ प्रगट होती है, आकस्मिक रूप से नहीं । गीतामाता भी कहती है : जिसे श्रद्धा होगी उसे ज्ञान होता है । **'करिष्ये वचनम् तव' (१८-७३)** परंतु वह स्थिति कब प्राप्त होगी ? **'नष्टो मोहः' (१८-७३)** लोग कहेंगे : यह गप है,

परंतु जब सब मोह नष्ट होगा तब स्थिति मिलेगी । तब शरणागति की स्थिति होगी । यही सच्चा जीवन है, दूसरा नहीं । ऐसे ही व्यक्ति समता, तटस्थता और विवेक रखता है ।

चेतन की दशा में यही सच है ऐसा नहीं, सभी सच है। पुरुषोत्तम भगवान गीता में दर्शन कराते हैं । प्रारब्ध के संयोग से पाप की क्रिया में उतरना पड़ता है । पाप में वह कैसे ले जाय ? प्रत्यक्ष करके अपने-आप वह साबित हो तो भी बुद्धि स्वीकार नहीं करेगी । ऐसा शास्त्र है ।

मौनमंदिर में भावना की जागृति

भावना विकसित करने के लिए साधन चाहिए । बाहर होते हैं तो भाव-आवेश कुछ समय के लिए टिकेगा । अंदर वह भावना सतत चालू रहती है और उसे जीतीजागती रखे, जैसे यह पेड़ है। बीज को पृथ्वी का स्पर्श लगे और वर्षा का पानी लगे फिर संवर्धन अपने-आप हुआ करता है । इससे भावना चाहिए, फिर उसका विकास अपने-आप हुआ करेगा । संग्राम तो भावना को विकसित करने के लिए है, उत्तम करने के लिए है । जिसका भाव ही जागृत नहीं, ऐसे भावना के बारे में कुछ नहीं कर सकते । जिसे भूख लगेगी वह खायेगा ही । **युगोंयुगों से भावना जगाने कि लिए अलग अलग साधन प्रगट हुए हैं । फिर भी भावना का नाश होने लगा, तब स्थूल साधन भी प्रगट हुए, उसे टिकाने कि लिए मूर्ति आई ।**

मौनमंदिर में नामस्मरण ही मूर्ति

यहाँ तो भावना विकसित करने नामस्मरण का साधन है, मूर्ति नहीं रखी है । जिस किसी को जिसमें अभिरुचि हो वह वह काम कर सकता है । इसी प्रकार करना ऐसा बंधन नहीं है । मैं तो बालक

को भी मौन में बैठा दूँ । नंदलाल के साड़ेतीन साल के बेटे को मौन में बैठाया था । माता पास में नहीं रहेगी । छोटे से छोटे को बिठाने की मेरी तैयारी है । मैं तो किसी भी धर्म के व्यक्ति को बैठा दूँ, हरिजन बहन आने वाली है । शिक्षिका है । हमारे यहाँ आई थी । मैंने कहा 'मुफ्त नहीं बैठाऊँगा ।' उसने कहा 'पैसे नहीं होंगे तो कहीं से माँगकर लाऊँगी ।' भावना बिना किये हुए कर्म उत्तम प्रकार के हों, परंतु उसका परिणाम उत्तम नहीं आता । बालक नर्क को गींजता है, खाता है फिर भी उसे आनंद आता है, हम उसकी घृणा करते हैं । **कर्म एक ही है, कर्म करते समय किस प्रकार की भावना रहती है, उस पर आधार रखता है ।** वासना में मन डूबा हो तो कर्म उत्तम नहीं होगा । इसलिए मन को उत्तम बनाओ । मन को ऐसा उत्तम बना दो कि अच्छे-बुरेपन का भेद ही न रहे । उसके लिए भगवान-प्रति की गति रहे तो ही हो सकता है । भावना को विकसित करने के अनेक प्रयत्न किये । किस तरह चेतनतत्त्व का जल्दी अनुभव करें । उन प्रयोगों से ज्ञानयोग, भक्तियोग, सांख्ययोग इत्यादि मार्ग हुए । यह सब प्रयोग से सिद्ध कर सकें ऐसा है । जिस तरह परदेश जाना हो तो पैसे चाहिए, उस तरह वृत्ति शुद्ध करने के लिए भगवान-प्रति की गति चाहिए । और उस तरह वृत्ति शुद्ध हो, तब मन लायक बनेगा, परंतु हम जीवट से कूद पड़ने को तैयार नहीं होते ।

त्रिवेणीसंगम का फल

किस तरह निर्मोही, निरहंकारी, निर्मम हो सकते हैं, वह सोचते नहीं । नामस्मरण का सातत्य बना रहे और साथ-साथ ये सब गुण भी प्रकट हों तो त्रिवेणीसंगम का फल मिलेगा । बात कहने से कुछ कीमत नहीं, प्रयोग से ही बात सही तरह से समझ में आती है ।

किसी भी चीज का स्वाद जबान पर रखने से ही समझा जा सकता है । मेरे गुरुमहाराज का हुक्म है, 'भाषण करना छोड़ दो, बोलना नहीं, प्रवचन करना नहीं, पास आने दो, दिल का प्रेम नहीं होगा वहाँ तक वचन गले उतरेंगे नहीं ।' मेरे गुरुमहाराज के हुक्म के अनुसार चलता हूँ । प्रेम होता है, तभी वचन गले उतरते हैं । हजारों भाषण कर जाते है, परंतु भाषण करनेवाले की भावना नहीं है । शब्द को ले जानेवाला ईश्वरतत्त्व है । **शब्द को प्रसारित करने के लिए जिस तरह बिजली की शक्ति फेंकी जाती है, उसी तरह भावना रूपी शक्ति भाषण करने वालों में नहीं होती, और जो हमारे में नहीं है, वह सामने वाली व्यक्ति में कहाँ से आएगा ?** यह तो निरा दिखावा है । गुरुमहाराज ने जब मुझे यह सब कहा, तब मेरे गले उतरा नहीं, परंतु अब वह समझ में आता है ।

भावना की लहर

भावना वह प्राप्त करके स्वीकार कर लेने की वस्तु है, वह विवशता की निशानी नहीं है । भावना की लहर कम होती है, तब अलग होने पर भी साथ छोड़ा नहीं है । भावना होती है तो अलग नहीं हो सकते ।

कोई पूछता है : '**मोटा**, आपको क्या दुःख है ?' मेरे पास सूक्ष्मदर्शक यंत्र नहीं है, अन्यथा देख सके होते कि कितना त्याग इत्यादि है, कितनों की समस्याएँ दूर की हैं ।

दिनांक : २३-८-१९६०

॥ हरिः ॐ ॥

१४. संत का सूक्ष्म कार्य

मानवजीवन की वास्तविकताएँ

पशु, पक्षी, जलचर इत्यादि को भी आनंद की प्रवृत्ति पसंद है, यद्यपि वे हमारे से अधिक विकास नहीं कर पाये हैं। मनुष्ययोनि पशु-प्राणी में सुखद भाव विकसित होते रहते हैं, उन लोगों को प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उसके विरुद्ध उन लोगों में बैर की भावना भी है। मनुष्य को कुदरत ने जो धर्म दिया है उसको संतोष देने के लिए प्रकृति है। हम अखंड रूप से ऐसा कुछ भोगते नहीं हैं। पशु, पक्षी इत्यादि लोगों में अपने आप संयम रहा है। मनुष्य की बुद्धि का आंतरिक विकास हुआ है। हमारे में मन, बुद्धि, प्राण, चित्त और अहम् हैं, प्राणिओं में बुद्धि, मन विकसित नहीं हैं, प्राण है, चित्त भी है। कामवृत्ति कुछ समय के लिए संयोग की भूमिका में प्रकट होती है। मनुष्य प्राणी ऐसा है कि बुद्धि, चित्त, प्राण का विकास हुआ है। यह विकास किस कामका ? मनुष्य ने उसे नकारात्मक वृत्तिओं को पुष्ट करने के लिए ही उपयोग में लिया है और उसी से ही आनंद लेते हैं, परंतु वह सदैव टिकता नहीं है। जिस कार्य के पीछे लोलुपता, आशा इत्यादि घुँघराते रहते हैं **उसे कामना कहते हैं**। जिसे कामना हो उसे ही क्रोध होता है और बुद्धि भ्रष्ट होती है। जैसे दूध में थोड़ा दहीं डालें तो पूरा दूध दहीं बन जाता है, वैसे बुद्धि बिगड़ती है, तब सर्वनाश होता है। अनुभवी लोगों ने देखा कि ऐसा न हो तो ही बच सकते हैं। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या इनमें से एक भी दाखिल हो जाय तो पूरा झुंड आ जाएगा। उसके कारण अशांति, वेदना, दुःख सब होगा, आनंद नहीं होगा, चैन न मिले वैसा होगा।

द्वंद्व की भूमिका का महत्त्व

मनुष्य का शरीर मिला है, परंतु साथ में द्वंद्व की भूमिका भी मिली है। इससे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् उसी तरह व्यवहार करेंगे, उन सब का उतार उसी तरफ रहेगा। अहम् को ढाल मिला है प्रकृति का, उसी तरह अहम् काम करता है (नदी जिस तरफ ढाल हो उसी तरफ ही बहती है।) ऋषिमुनिओं ने देखा कि इच्छा-अनिच्छा (inspite of ourselves) से ऐसा होता है, वर्षा होती है, तब घास उग निकलती है, उसीतरह काम उत्पन्न होता है, इससे यह सब होता है। इसलिए काम न हो उसके लिए लोगों ने उपाय सोचे। मन सदैव काम के लिए आतुर रहता है। मन की ऐसी स्थिति हो जाय कि उसे काम की आतुरता की स्थिति न रहे। सरकार कहती है कि आबादी बढ़ रही है, इसलिए ऐसा उपाय करो कि जिससे बालक न हो...शास्त्रों ने तो कहा है कि एक या दो बालक होने चाहिए।

सतत आनंद कब

सहकारी सहधर्म का पालन करो, एक दूसरे के सच्चे साथी बने रहो। एक दूसरे के काम में प्रेरणात्मक बनो। जिंदगी में यह सब भूल गये हैं, धर्म क्या है वह भूल गये हैं, क्या आचरण करना वह भूल गये हैं। **यह** मार्ग ऋषिमुनिओं को क्यों सूझा ? उसके मूल कारण वैसे तो ढूँढ़ने पड़े। मन की ऐसी स्थिति उत्पन्न हो कि काम का स्पर्श ही न हो। नंदलालभाई एक दवाई लगाते हैं, जिससे मच्छर काटते ही नहीं, ऐसी स्थिति मन की हो जाय जिससे काम होते हुए भी स्पर्श न करे। वैसी मन की स्थिति हो जाय तो (काम) स्पर्श ही करे नहीं। जिंदगी आनंद के लिए ही है, हम तो बेगार उतारते हैं, बैल जिस तरह करता है उस तरह, परंतु उसे

हमारे समान संवेदनाएँ, त्रास होता नहीं है, वेदना होती है, परंतु वह जड़ है । हमारी इन्द्रियाँ विकसित हैं, इससे क्षोभ-त्रास लगता है । ऋषिमुनिओं ने हमारा मन नीरवता को प्राप्त करे, किन्तु नीरवता वह जड़ नहीं, उसके लिए सोचा । मन पशु जैसा नीरव हो, किन्तु नीरवता चेतनात्मक रहे । उसमें तो बिलकुल जड़ता होती है, जब कि हमारे में नीरवता वह विचाररहित सही, परंतु वह चेतनात्मक होती है । ऋषिमुनि ऐसी स्थिति चाहते हैं, ऐसी मन की स्थिति हो, तब काम आप को स्पर्श नहीं करेगा । जिस तरह कमल कीचड़ में रहता है, फिर भी कीचड़ का स्पर्श नहीं होता है, उसी तरह काम स्पर्श नहीं होगा और वैसा न हो तो ही सतत आनंद गंगामैया के पुनीत प्रवाह जैसा आनंद प्रकट होगा ।

सतत परिश्रम करने से शोध

इस पृथ्वी में अनेक प्रकार की बाबतों में कला-विद्या विकसित हुई हैं । उनमें प्रत्येक में रस है । **'रसौ वै सः'** वह यानी चेतन, वह रस है (ऐसा एक तत्त्व है, उसका नाम दिया चेतन ।) जहाँ वह डूबता है, वही रस हो, आनंद हो परंतु वह चेतन वाला हो । मन ऐसा बिचाररहित हो तब, परंतु वह विचाररहित कैसे होगा ? उसका एक उपाय वह प्राणायाम का । हम तो संसारव्यवहार के मनुष्य, वह संभव नहीं । **'हरिः ॐ' लंबा करके करना तो विचार नहीं आएगा ।** यह अचानक मिला, परिश्रम करे तो सत्य अचानक मिलता है । पहले मोतियाबिंद कच्चे नहीं निकाल सकते थे । ओच्छवलाल गांधी यहाँ (अपने आप) आये थे । उन्होंने कहा कि यूरोप में दिमाग में इन्जेक्शन लगाने से मोतियाबिंद अलग हो जाते हैं । वह देखा, प्रयोग किये । Ratina (नेत्रपट) के साथ डोरियां बंधी हुई रहती हैं, मोतियाबिंद को वे पकड़ कर रखती

हैं। इन्जेक्शन लगाने से नसें कमजोर हो जाती हैं, इससे मोतियाबिंद अलग हो जाता है। इससे बाद में निकाल देते हैं। इस तरह भी चीज के लिए सतत एकसा परिश्रम करने से प्राप्त हुआ। इस तरह साँस लेने का प्रयत्न करें तो उतनी देर विचार नहीं आएगा। इस तरह हरिः ॐ (लंबाकर) बोलने से भी उस अवधि के दरमियान विचार नहीं आएगा। बिलकुल विचार न आये ऐसी स्थिति हो जाय तो निरहंकार, निर्ममत्व, निरासक्त हो, तो काम-क्रोध की स्थिति से ऊपर की स्थिति पर टिक सकते हैं, इन सबका स्पर्श नहीं होगा, किंतु वह है दुष्कर। अतः अभंग-अलग साधन हुए।

सत्संग वह महात्मा के साथ दिल की दोस्ती

कर्म, तंत्र, भक्तिमार्ग, ज्ञान ये सब साधन दिये, किन्तु ऋषिमुनिओं ने देखा कि यह सब लोग तो नहीं कर सकते। जगत को ऐसा साधन दो कि हरएक व्यक्ति कर सके। भगवान का स्मरण उसका नाम। यह सरल, निर्दोष साधन है। यह करते-करते अखंडता-अटूतता बनाये रखें तो जो परिणाम योगतंत्र से आये वही परिणाम नामस्मरण से आये। वैसा उन्होंने अनुभव किया। वह करते-करते अनेक भक्त हो गये, ऐतिहासिक बात है और आज भी सत्य है, उस स्थिति पर पहुँचे हुए हैं, यह प्रयोग की हकीकत है। उसके लिए दहकती तमन्ना, विश्वास प्रकट नहीं हुआ है। अनेक कारणों से मन क्षुब्ध, उकताया-उलझन में फँसा हुआ होता है, तो फिर महात्मा के साथ सत्संग करो, किन्तु प्रेमभक्ति से करना, **उनके साथ मित्रता करना, भले नाम न लो।** इस कठिन काल को मैं प्रपंचकाल कहता हूँ। ऐसे महात्मा मिलने मुश्किल हैं, परंतु प्रारब्ध का योग होगा तो मिल जाएँगे, संसार में ऐसे लोग हैं सही। जिस तरह बगीचे में फूल खिलते हैं और दिमाग तर होता है उसीतरह

ऐसे महात्मा की सुगंध से भी लाभ होगा, ऐसे महात्माओं के जीवन की खुशबू भी असर करेगी। ऐसे महात्माओं को खोजने की हमारी तमन्ना नहीं है। किसीको मिलते हैं तो भी उसे झंखना नहीं है। **उसकी मित्रता करोगे तो भी आपको अत्यंत शांति मिलेगी। यह न हो तो अच्छी भावना विकसित करो।**

स्वयं को ही पहचानो

चारों करवटों से मनुष्य पहचाना नहीं जा सकता। एक व्यक्ति किसी को लुच्चा लगे, दूसरे को भला लगे, किसीको दयालु लगे। एक व्यक्ति को समग्र रूप से पहचानने के हम लायक नहीं हैं, तो फिर महात्मा कैसे पहचाने जाएँगें ? इससे वह छोड़ दो, स्वयं को पहचान लो, दूसरे को पहचानने की तुम्हारी शक्ति नहीं है। **लकड़ी रखने से बुखार नहीं नापा जा सकता !** थरमामीटर ही चाहिए। इससे पहले स्वयं को पहचानो, दूसरे को पहचानने का छोड़ दो। दूसरों के साथ प्रेम करना सीखो, तू प्रेम कर। प्रेम से भेद कम होगा और यही उसका लक्षण है, तू कैसा है, वह देख। दूसरे की बात करता है, तब यह डंडा फेंकूँ ऐसा होता है। गुरुमहाराज ने डंडा दिया था और कहा था, 'जो कहे, उसे दो डंडे मारना'। परंतु मैंने लिया नहीं। आज लगता है कि लिया होता तो अच्छा होता। चाहे मेरे पास नहीं आता। महिलाओं को भी ऐसा कहते देखता हूँ, उनसे भी कहता हूँ कि तुम स्वयं के बारे में विचार करो। मेरे पास आते हैं, उन्हें कहता हूँ कि तुम बहिर्मुख हो गये हो, अंतर में काम करने तो बंद हो गए हो, आँखों से जो देखा उसमें मोहित हो गये हो। कुदरत का सौंदर्य ऊँची भावना में ले जाता है और सौंदर्य विकार भी पैदा करता है-दोनों वस्तु कुदरत ने बक्षी हैं। इससे हमारा विशेष पतन होता है। जैसे-जैसे वह (विकार) बढ़ता

है वैसे वैसे वह ज्यादा दुःखी । सुधारना भी संभव नहीं । १९१९ से सुधारने का झंडा लेकर निकला, परंतु कितने लोग सुधरे ? उलटा ज्यादा हुआ है । गुरुमहाराज ने डंडा लेकर कहा, 'गांधीजी के साथ २० वर्ष सेवा की उसका क्या परिणाम आया ?' जब डंडा ठोका तो चेत गया । बाहर की सेवा में रागद्वेष होते हैं । जहाँ तक स्वयं में गहरे न उतरें, स्वयं को पहचानने का प्रयत्न न करें वहाँ तक कोई फायदा नहीं होगा । संसारव्यवहार में किसी के साथ संबंध नहीं रखना, वह संभव नहीं, शरीर है वहाँ तक व्यवहार करना ही पड़ेगा । सब के साथ सद्भाव, सहानुभूति रखेंगे तो अवरोध की लहरें बाधा नहीं डालेंगी, हमें अशांति नहीं होगी, गतिशील नहीं होगें, खून होता है वह नहीं होगा । इस तरह व्यवहार करते समय लगेगा, परंतु उससे तुम क्षुब्ध नहीं होगे, कुछ नहीं होगा, ऐसी स्थिति पैदा होगी । **भगवान के स्मरण से नीरवता प्रकट होती है । आनंद टिके उसके लिए निरामय, निरासक्त, निराग्रही होने की वृत्ति विकसित करनी होगी ।**

कर्म का हेतु

कर्म मिले हैं, वह भावना विकसित करने के लिए । मिला हुआ कर्म उत्तम से उत्तम करें और उसे यथायोग्य भावना विकसित करने का साधन (medium) समझ कर ऐसा ज्ञान प्रकट करेंगे तो गुणशक्ति जरूर प्रकट होगी । उस तरह व्यवहार करने से मन की इस प्रकार की स्थिति पैदा होगी कि जिससे संसार की मनोव्यथा, व्याधि स्पर्श नहीं कर सकेगी ।

तिजोरी की चाभी खो गई हो तो तलाश करने का प्रयत्न करते हैं और दूसरा काम आ जाय तो भी चिंतन चाभी का रहेगा । मन का चिंतन धारणा में रहा करे उसके लिए भगवान का स्मरण उत्तम

वस्तु है, परंतु वह गंगा के पुनीत प्रवाह की तरह उत्तम अखंड रीति से लेना चाहिए । उसके साथ नीरवता, निरहंकारता इत्यादि प्रकट करने का करेंगे तो ऐसी स्थिति प्रकट हो, **'कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम्' शक्तिमान हो सकेंगे ।**

महात्मा का प्रारब्धयोग

प्रारब्ध के कारण जिन-जिन जीवों के साथ जिस प्रकार का प्रारब्ध है, वैसा उनके साथ भोगना पड़ता है ।

महात्मा को शरीर होने से मर्यादा होती है, परंतु गुण में नहीं । समुद्र की एक बूंद में खारापन हो और समुद्र का खारापन हो वह एक ही प्रकार का होता है । जिस शरीरधारी आत्मा को चेतन का अनुभव होता है, उसके चेतन में और चेतना के गुणों में फर्क नहीं परंतु शक्ति की मर्यादा जरूर रहती है, जैसे कि रेलगाड़ी पटरी पर चलती है । चेतना वाला आत्मा उसका शरीर प्रारब्ध के अधीन होने से उस प्रकार चलता है, परंतु उसे उसका बंधन नहीं, ऐसा उसने विकसित कर लिया होता है ।

प्रचार नहीं

मन को कुछ भी स्पर्श न करे इसके लिए साधन चाहिए, और ऐसा सरल साधन वह भगवान का नामस्मरण है । यह ऐसा सरल साधन है, योगविद्या या दूसरे किसी भी साधन से सरल है । संसारव्यवहार में इतने ज्यादा उलझे हुए होते हैं कि शांति या कुछ होता नहीं है । इससे गुरुमहाराज ने यह बताया है और आज्ञा की है, 'जो आवे उसे बैठाना, प्रचार नहीं करना ।' तुम भी प्रचार करोगे या अत्युक्ति करोगे तो मेरा खून कर रहे हो ऐसा माना जायगा । तुम प्रेम के कारण करते हो, परंतु सच्चे अर्थों में मेरा

खून ही करते हो । तुम भाव से कहते हो, परंतु अत्युक्ति हुए बिना नहीं रहेगी ।

इससे अच्छा तो प्रेम से तुम्हें दिया हुआ काम करो । तुम्हारे विकास के लिए करना, गिनती से किया या किसी ख्याल या विचार से किया तो वह निरर्थक है । किसी विकास के हेतु से करोगे तो अलग बात है ।

मौनमंदिर किसलिए ?

नामस्मरण से संसार के सभी विघ्न, अशांति इत्यादि भूल जाते हैं । उसकी खुमारी टिकती है । प्रारब्ध से मिलने का यह स्थान खड़ा किया है । तुम्हारे लिए नहीं, मेरे प्रारब्ध के लिए किया है । मैं बोलता हूँ प्रेम करता हूँ, दिल से हलनचलन करता हूँ यह सत्य कहता हूँ, यह सत्य करता हूँ । मेरा कोई बिगाड़ेगा उसका मुझे डर नहीं है, कोई बिगाड़ेगा तो भगवान बिगाड़ता है ऐसा मानूंगा ।

तुम्हें झांखी हो वह भी उच्च प्रकार का आनंद है ।

दिनांक : ३-८-१९६०

॥ हरिः ॐ ॥

१५. स्मरण का अभ्यास

झुंडों में कल्याण नहीं

शहर के और यहाँ आने वाले मित्रों से मेरी विनती है कि मैं कहीं जाऊँ या यहाँ आऊँ तब स्टेशन पर नहीं पधारें, वहाँ आकर समय और पैसे बिगाड़ने का अर्थ नहीं है । उतना समय अच्छे काम या परोपकार के काम करने में दो । इस तरह समय का बिगाड़ दुरुपयोग होता है । संसार में लक्ष्मी एक सब से बड़ी शक्ति है, संसार आज उसके नाप से चलता है । धनवान कैसा भी हो—दुराचारी हो—तो भी लोग उसे मान देते हैं, जबकि गरीब चारित्र्यवान हो, परंतु लोगों के मन कोई कीमत नहीं होती । लक्ष्मी की तो कीमत है । फिर भी आज समय का मूल्य विशेष है, वह लोगों के लक्ष्य में उतरता नहीं है । इस **तरह झुंड में आना उसमें बिलकुल कल्याण नहीं है । सचमुच यदि भावना हो तो मेरा काम करो । झुंड में जाना, आना, कोलाहल करना उस पद्धति का कुछ भी अर्थ नहीं है । उससे सच्चा भाव या उत्कट भावना (तड़पन) जागती नहीं है । सच्ची उत्कट भावना या भाव जिसे जागे वह बोले बिना रह नहीं सकता । इस तरह आने में मुझे तो निरा दंभ ही लगता है ।**

आश्रम में आने का हेतु

यहाँ आश्रम में जितने हैं, वे यहाँ के काम में लगे हुए हैं । यहाँ अनेक काम होते हैं, किसानी काम है, निर्माण कार्य चल रहा हो, कभी बढ़ई काम, राज का काम । ऐसे कई काम बारी-बारी से चला करते हैं, इसलिए **यहाँ स्वागत सम्मान हो ऐसी आशा से कभी भी आना नहीं । यहाँ आना हो तो सत्संग की आशा**

या अपेक्षा से आना । स्वागत करने की हमारी भावना नहीं है, ऐसा नहीं, **परंतु काम में ऐसी सुविधा नहीं है । हम आने का कहते नहीं हैं, उमंग हो तो अवश्य आना । यहाँ आने से किस तरह भावना प्रकट हो उसी तरह व्यवहार करें, यहाँ आकर सत्संग की बातें करें । आश्रम के लिए करते हो वह तुम्हारे कल्याण के लिए करते हो ऐसी भावना से करना । हमारे लिए करते हो ऐसा मानना नहीं । जो कुछ करो वह प्रेम-उमंग से प्रभुप्रीत्यर्थ करते हो ऐसा मानकर करना ।** मंगलवार को आओ तब बातें मत करना । तुम्हें गरज हो, पक्की गरज हो तो दूसरे दिन आना । यह तो यूं कि चक्कर के साथ चक्कर और प्रार्थना भी हो तथा मिलना भी हो जाय, वह नहीं चलेगा, **तुम नहीं होंगे तो दूसरे मिल जाएँगे । मेरा भगवान हजार हाथ वाला है । मैं समाज को-लोगों को देखता हूँ, उनका काम पहले ।**

मंगलवार को घर का काम हो तो आना नहीं । वहाँ गये और बातें कर आये वैसा मत रखना ।

प्रयोग करके देखो

अब भजन की बात । भगवान के स्मरण से कितनी तरह के सहारे मिलते हैं ? जानी साहब अंदर बैठे थे । कुछ आदतें उन्हें थीं । बीड़ी, चाय इत्यादि की, अंदर कुछ भी बाधा उत्पन्न नहीं हुई । भगवान का नाम यानी वह तो जीवंत धनलक्ष्मी जैसा है । नाम लेते रहो तो शांति, प्रसन्नता रहेगी, उलझन में नहीं रहोगे, व्यथित नहीं होओगे, और मन को प्रसन्न रख सकेंगे । जहाँ तक संसार है, वहाँ तक समस्याएँ आती रहेंगी । उससे मुक्त होने के लिए भगवान के स्मरण का सहारा लेना चाहिए । प्रार्थना-स्मरण करोगे तो उस सब में (उलझन-समस्याओं में) उलझता मन रुक जाएगा । यह

तो मानसशास्त्र का सिद्धांत है । हमारा मन एक समस्या में उलझा हुआ हो और हल न मिलता हो, तब हमारे मन को दूसरी जगह मोड़ देना चाहिए, तो पहले की तक़लीफ़ कम होगी । ऐसा करने से मनोव्यथा, व्याधि, चिंता, फिकर इत्यादि में सब से ज्यादा हलकापन प्रकट होगा । इसलिए यह करके देखो तो मालूम पड़ेगा ।

स्मरण से शांति किस तरह ?

जो मनुष्य भगवान का स्मरण करता है और उसका जिसे अभ्यास है, उस अभ्यास के कारण उसका हल एकदम मिल जाता है, यह मानसशास्त्रीय हकीकत है । तुम्हारा मन जब किसी समस्या में उलझा हुआ हो, तब सुषुप्त मन में (subconscious mind) विचार चला जाता है । जब हमारा मन प्रार्थना एकाग्रता में डूबा हुआ हो, तब विचार का अंकुर फूट जायगा । वह भगवान का स्मरण चालू रखोगे तो शरीर और मन की पीड़ा के हल भी आप को मिलेगा । यह मैं अनुभव की बात करता हूँ । तुम प्रयोग करके देखना, अनुभव से ही हकीकत समझ सकोगे, संसार में अनुभव जैसा दूसरा कोई गुरु नहीं । मेरे जैसे देहधारी हैं, वे वैसे नहीं पहचाने जाते । जहाँ तक उनके साथ दोस्ती न हो जाय, तादात्म्य न हो जाय, उसमें एक रूप नहीं हो जाते तब तक नहीं पहचाने जाते । हम संसारी मनुष्य को संपूर्ण रीति से नहीं पहचान पाते तो उसको कैसे पहचान पाएँगे ?

संसार का गुरु

इसलिए संसार में जीवंत गुरु वह नामस्मरण है, वह अंधे की लकड़ी है । वह तकलीफ में हिम्मत टिकाये रखता है, वह प्रगति में आगे ही आगे कदम बढ़ाता है, बल, साहस, तनदिही, उत्साह, धैर्य सब देता है । आध्यात्मिक भूमिका में भी इतने सब विघ्न आते हैं कि उन विघ्नों को भी दूर करने की भगवान के स्मरण के सिवा

दूसरे किसी की भी शक्ति नहीं है, इससे इन सब के लिए सर्वोत्तम साधन स्मरण ही है । और वह सब ले सकते हैं । पुरुष, स्त्री, बालक तथा किसी भी जाति के ले सकते हैं । महिलायें भी आचार्या हो गई हैं, उसके ऐतिहासिक उदाहरण हैं, जैसे कि गार्गी इत्यादि तो ऋषिमुनिओं के साथ विवाद भी करती थीं–और वह भी इतनी उच्च कक्षा पर कि जातिभेद का होश रहता नहीं, ख्याल रहता नहीं । **वेदों ने कहा है कि महिलाओं को शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं, यह बिलकुल गलत बात है ।** वह तो जब भावना का पतन हुआ तब कहने लगे कि महिलाओं को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है ।

'यह विद्वत्ता नहीं'

माता के गर्भ में हम नौ महीने रहेंगे । यदि उसमें ज्ञान नहीं होगा, संस्कार नहीं होंगे तो हमारे में कहाँ से आएँगे ? किन मूर्खों ने यह लिखा है, वह समझ में नहीं आता । मैं यह गुस्से से नीचा दिखाने के लिए नहीं कह रहा हूँ । मैं एक बार बनारस गया था । नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया की दोहित्री को हिन्दू युनिवर्सिटी में लेकर गया था । वहाँ बंगला किराये पर लेकर रहे थे । उनकी बी.ए. की परीक्षा में ऋग्वेद का अभ्यास करना था, उसमें अलग अलग छंद के बारे में एक विषय था । गायत्री छंद, शार्दूलविक्रीडित छंद जैसा । उसमें मात्रा की रचना, शब्दों की रचना किस प्रकार की ? आरोह-अवरोह किस तरह आये ? वे उसे किस प्रकार बोलते ? यह पद्धति जानने के लिए विद्वान के पास जाना पड़े । काशी की अपेक्षा दक्षिण में वैसे विद्वान ज्यादा हैं, परंतु लड़कियों को पढ़ाने के लिए बनारस में कोई तैयार नहीं हुआ, १००-२०० रुपये देते हुए भी कोई तैयार नहीं था । वे लोग कहते कि

'महिलाओं के आगे ऋचा नहीं बोली जाती' और परीक्षा में पच्चीस, मार्क्स का यह सवाल आता था। वह बराबर लिख सके तो गणित की तरह मार्क मिलें । मैं हिन्दू युनिवर्सिटी के इस विषय के अध्यापक को मिला। उनके पास भी असल पद्धति का ज्ञान नहीं। उन्होंने भी कहा, 'हम तो कालिज में सीखे थे। हम तो उस प्रश्न के मार्क छोड़ देंवे । अंत में मालवियाजी से मिला । उनको मैंने कहा, 'विषय रखा है परंतु सिखानेवाला कोई नहीं ।' उन्होंने भी कहा 'विद्वान यह सच्ची हकीकत समझने को तैयार नहीं हैं।' उन्होंने कहा 'दो चार मेरे परिचित मित्र हैं और अच्छे सात्त्विक हैं । उन पर चिठ्ठी लिख देता हूँ।' उनकी चिट्ठी लेकर गया फिर भी कोई तैयार नहीं हुआ। फिर भगवान को प्रार्थना की। मनुष्य को सभी प्रयत्न करने चाहिए, उसके बाद ही पुकारना चाहिए। लोग कहते हैं कि **'निर्बल के बल राम'** परंतु वह गलत बात है। राम तो सबल के-पुरुषार्थी के थे, इससे सभी तरफ से निष्फलता मिलने पर ही भगवान को पुकार किया। मुझे एक विद्वान मिल गये, उनके चरणस्पर्श किये । गुरुमहाराज का हुक्म होगा, मैंने मेरी तकलीफ समझाई । वे समझाने को तैयार हुए, उतना ही नहीं परंतु हसे भर तक बुलाकर संपूर्ण समझाया। इतनी सरल बात भी विद्वान समझने तैयार नहीं हैं। मैं तो उनको विद्वान नहीं कहूँगा, परंतु किताबों को सिर पर लेकर घूमने वालों, बोझा लेकर घूमने वालों जैसा मानता हूँ। ऐसे विद्वान, समाज का उद्धार नहीं कर सकेंगे । उनको तो बोझ लेकर घूमने वाले मजूर जैसे मानता हूँ। वे भले चर्चा में पराजित करें, परंतु सच्चा ज्ञान पुस्तकें पढ़ने से नहीं आता। हृदय का ज्ञान वह तो अलग होता है। मनुष्य को काम करने की अभीप्सा जागनी चाहिए ।

यह सच्ची यात्रा

हम व्यापार का कर्म करते रहते हैं, उस के बारे में किसीसे पूछने नहीं जाते, परंतु जैसे-जैसे उसमें गहरे उतरते हैं वैसे-वैसे अपने आप सूझ पड़ती है, परंतु जीवन का काम करना है, उसका भान जागा नहीं, उस भान को जगाने के लिए यह प्रयोग है । यहाँ बैठकर जो प्रयोग करेगा वही सच्चा अनुभव, सच्ची यात्रा है, बाकी यात्रा पर जाना वह तो निरर्थक है, पैसों की बरबादी होती है । वह तो सैर करने जाने की इच्छा होती है, इससे जाते हैं, परंतु वह सच्ची यात्रा नहीं है, सिर्फ़ पैसों की और समय की बरबादी है । यहाँ तो एकसा प्रयोग, १४-१५-१८ घंटे एकसा प्रयोग करो, उसके समान यात्रा नहीं है । यह हमारा है इससे ऐसा नहीं कहता हूँ।

'लंबकर्ण'

आप चाहे जितने शास्त्रों-प्रवचनों को सुनो परंतु उसमें से एकाग्रता नहीं जमेगी, परंतु यहाँ जो करोगे उससे जो गहरे संस्कार पड़ेंगे वे यात्रा से या प्रवचन सुनने से नहीं पड़ेंगे । मनुष्य ढ-गधे जैसे हैं, मनुष्यों को इतनी सब पूछे जुड़ी हुई हैं । गधे को कहते हैं, उससे ज्यादा हमारे कान निंदा, दोष इत्यादि सुनने के लिए बड़े हैं, संसार की नकारात्मक बातें सुनने को मनुष्य और उसके कान उत्सुक हैं। इससे हम ऐसे मनुष्य को लंबकर्ण कहते हैं । आप स्वयं सोचना कि बात सच है या ग़लत ।

हृदय में स्थिर करो

इन सब में से उबरने के लिए कोई श्रेष्ठ उपाय हो तो भगवान का स्मरण है । यह बहुत बड़ी दवा है । वह मारने वाला भी है और तारने वाला भी है । मारने वाला इसलिए कहता हूँ कि जीवदशा को हरने वाला है और तारने वाला इसलिए कहता हूँ

कि साथ-साथ भावना को प्रकट करने वाला है । ऐसी एक दवा, जो मारक और तारक दोनों एक साथ है, वह नामस्मरण है । अनेक भक्तों और ऋषिमुनिओं ने लोगों पर करुणा करके यह साधन दिया है । इससे तुरंत तपस्वी नहीं हो जाने वाले, परंतु संसार-व्यवहार में किसी उलझन में उलझ जाओ, उस समय यह भगवान का नामस्मरण का भोजन साथ रखना, जिस तरह धन को तिजोरी में रखते हो, उसी तरह इसे हृदय में स्थिर करें ।

नामस्मरण का उपयोग

लोग सोचते हैं कि वह क्या उपयोग का है ? मैं कहता हूँ कि 'करके तो देख ।' पानी में गये बिना और हाथ हिलाये बिना तैरकर नहीं जा सकते, वैसे यह करते-करते अजपाजप तक जाओगे तब उसका लाभ समझ सकोगे । मनुष्य को घाटा लगे फिर भी एक ही एक व्यापार को १५-२० साल तक पकड़ रखे तो वह व्यापार एक बार जरूर लाभ देगा । मनुष्य लक्षाधिपति हो, पास में दस-बीस लाख रुपये हों और वह सब शून्य तक चला जाय फिर भी वह व्यापार को पकड़ रखे तो फिर पहले की स्थिति पर आ जाय । ऐसे व्यक्तिओं को भी मैंने देखा है । लोग कहते हैं कि भगवान के नाम में कोई स्वार्थ नहीं, उसके साथ क्यों जुड़े रहें ? हम कहते हैं कि उसमें तुम्हारा स्वार्थ है । जैसे हमें शरीर की आवश्यकता, साथ में कान, आँख, हाथपैर-सभी इन्द्रियाँ भी उतनी ही आवश्यक हैं, वैसे शांति, प्रसन्नता इत्यादि बनाये रखने और बीमारी, चिंता, आपत्ति इत्यादि में टिकने के लिए सर्वोत्तम साधन भगवान का स्मरण है, परंतु लोगों को उसमें श्रद्धा, विश्वास नहीं है । श्रद्धा बिना और किये बिना अनुभव नहीं कर सकते । श्रद्धा यानी अंधश्रद्धा नहीं । हमें चलाये, मार्ग दिखाये वही श्रद्धा सच्ची,

और सच्ची श्रद्धा हो तो ही ज्ञान पाते । गीतामाता कहती है कि ऐसी श्रद्धा प्रकट हो तो भगवान का स्मरण हमें अनेक प्रकार से सहायक बनता है । ऋग्वेद में गायत्री का प्रतीक है । सूर्य सही रीति से तो तेज और शक्ति देने वाला है, चेतन को वह प्रार्थना है ।

अभी तो हमारी बुद्धि मोहकलिल है, वह सही हल नहीं ला सकती। वह आवरण दूर हो तो ज्ञान अपनेआप प्रकट होगा । गायत्री उस आवरण को दूर करने के लिए बड़ी से बड़ी प्रार्थना है । अनुभविओं ने वैसा कहा है ।

अभ्यास का परिणाम

बुद्धि, मन, चित्त, प्राण के आवरण, अहम् की न खुलने वाली गाँठ, यह सब टालने के लिए कोई साधन हो तो भगवान का नामस्मरण है । वह इतने सारे परिणाम देने वाला है । प्रत्यक्ष मौन में ७-१४-२१ दिन बैठो । और फिर भी व्यापार करते, खातेपीते, घूमते-फिरते, भगवान का नाम लिया करोगे और फिर बैठोगे, परंतु अभ्यास चालू नहीं रखोगे तो पालिश उतर जायगा । बैटरी कितनी जल्दी चार्ज हो गई वह देख सकते हैं । ऐसे प्रकार का पालिश आता है कि परखने के पत्थर पर भी जवाब दे और ठगे जाते हैं, फिर भी वह उतर तो जायगा । आप यदि अभ्यास चालू नहीं रखोगे तो कोरे हो जाओगे । इसलिए मेरी सब से प्रार्थना है कि यहाँ जो अभ्यास करो उसमें से प्रेरणा पाना। नंदुरबार से भगत आये थे, वे तो रात्रि को भी जागते । इसलिए बाहर निकलने के बाद भगवान के नाम का जो पाथेय मिला है, उसका उपयोग किया करना तो बहुत सरलता प्रकट होगी । काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि शत्रुओं का नाश करने में आपको मदद मिलेगी । यह अनुभव की

हकीकत है, वह बुद्धि के तुक्के द्वारा नहीं समझ में आएगी, अनुभव के लिए प्रयोग में कूदना ही रहा। बल, साहस, हिम्मत, धैर्य इत्यादि गुण विकसित करके जो इस प्रयोग में जीवट के साथ कूदेगा उसे सच्चा अनुभव मालूम पड़ेगा। उसका उठाव किस तरह जल्दी हो वैसा करें। इसलिए किसतरह निर्मम, निरासक्त, निरहंकारी हो सकते हो वह सोचें। और यदि वह करें तो उससे कई गुणों का उठाव होगा। यह सब न बने तो भी नाम लेते रहो। यदि उसमें अखंडता प्रकट होगी तो ऐसी तेजस्विता प्रकट होगी कि जिससे आत्मा के प्रकाश को ढक देने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि नष्ट हो जाएँगे, पीछे हटने लगेंगे। उससे ऐसी आंतरिक शक्ति प्रकट होगी कि जिससे इन सब अवगुणों को जरूर हटा सकेंगे, यह नितान्त कल्पित हकीकत नहीं है।

शरणागति

अनुभविओं ने स्वयं फना हो जाकर जो तत्त्व उन्हें दिखाई दिया वह परम कृपा से दिया है। हम भगवान के स्मरण का आश्रय लेते नहीं, धन का आश्रय मनुष्य लेता है और स्मरण का आश्रय लिए बिना वह किस तरह मदद कर सकेगा ? हम संसारव्यवहार में अपरिचित के पास जाएँगे तो वह क्या हमारा काम करेगा सही ? इसलिए भगवान का आश्रय लेना हो तो उसके शरण में जाना पड़ेगा। वह कब होगा ? ममत्व छोड़ दोगे तब। हमें तो हमारा सब अपना अलग रखना है तो वह भी बेकार नहीं है। यदि देहधारी होता तो दो थप्पड़ मार देता।

'मोटा' का प्रेम

मैं संसार में देखता हूँ, मनमें 'मोटा' कितने समय रहते हैं, वह सोचना। गुरुमहाराज ने आज्ञा की है कि सच्ची बात कहना।

हमें आपके साथ दोस्ती करनी है यह बात सच है, फिर भी सच बात बतानी रही । आप आपके स्वरूप को समझना, मन को, दिल को लाख बार सोचना । आप कहोगे तो हमें एतराज नहीं है, मदद न हो सके तो मत करना, परंतु आप सब मेरे मित्र हो, वह अनुभव से समझ सकोगे ।

हमें आपके साथ दिल की भावना-चाहना है, आपके संसारव्यवहार की उलझनें-समस्यायें लाना, आपको जरूर शांति होगी, यह सेवा करने के लिए ही यह स्थल बनाया है । पहले भी सेवा करता था अब भी सेवा करते हैं । भगवान कहते हैं वैसे प्रेम करना है, परंतु प्रेम कोमल नहीं है । वह कोमल भी है और वज्र से ज्यादा कठोर भी है । जिसने जीवन त्याग दिया है, उसे भी कहता हूँ कि तेरे में अहम् है, नम्रता नहीं अपनाओगे वहाँ तक भक्ति का प्रकाश नहीं मिलेगा, वहाँ तक जीवन का सच्चा तत्त्व नहीं पा सकोगे । जिस-जिस के साथ प्रारब्धयोग है, उसे मिलने के लिए यह जगह है । आपकी खुशामत नहीं करनी है प्रसंग आये तो कहना भी पड़े, गुस्सा भी होना पड़े । सोचोगे तो आँख खुल जायगी, यदि ठोकर लगेगी तो पैर में दर्द जरूर होगा ।

मेरे दिल की गारंटी है कि आपको चाहता हूँ या नहीं ? भगवान की कृपा के कारण प्रारब्ध भोगने के लिए यहाँ रखा है । इसलिए प्रेम करता हूँ । प्रेम लाड़ भी करे और सज़ा भी दे । उसके समान कोमल भावना नहीं है । प्रेम करूँ तब पसंद आये, परंतु वज्र समान कठोर बात पसंद नहीं आती ।

चेतन में निष्ठा पाया हुआ जीव अत्यंत स्पृहा वाला भी हो सकता है और अत्यंत निःस्पृह भी हो सकता है । आप सोचते होंगे कि वह ऐसा क्यों करता है ? परंतु वह तो ऐसा ही होगा । अग्नि

गरम हो तो गरम लगेगा, वह उसका लक्षण है। लक्षण के दो पहलू हैं, वे दो पहलू समझने पड़ेंगे, तब सच्ची हकीकत समझ में आ सकती है ।

आपको यहाँ आना हो तो आना, नहीं आना हो तो मत आना । मैं कठोर हूँ परंतु मेरा धर्म निभाता हूँ मुझे माफ करना ऐसा नहीं कहता और यदि कठोर होकर सच्ची बात न करूँ तो बेवफा गिना जाऊँगा । झुंड से कुछ नहीं होगा। महात्मा गांधी यहाँ सुरत में नदी किनारे भाषण करते, कितने लोग आते ! परंतु कुछ हुआ नहीं । एक-दो चिनगारी प्रकटे तो भी बस । मैंने बहुत लोग देखे । मैं कहता हूँ वह सीधी और सच्ची बात करोगे तो आपका अच्छा होगा । मैं सच्ची बात समझा सकूँगा । यदि आप मैल रखकर आएँगे तो मैल बढ़ेगा, साफ दिल से बात करोगे तो शांति मिलेगी । भगवान का स्मरण करते रहो, साथ में प्रार्थना-सेवा करते रहो, रागद्वेष फीके करते रहो और अहम् को मिटाते रहो तो कुछ अर्थ है ।

दिनांक : २०-९-१९६०

॥ हरिः ॐ ॥

१६. 'मोटा' के साथ दोस्ती

बीज

जमीन पर यदि अच्छी धूप और बारिश पड़े तो जमीन की लायकी मालूम पड़े । बारिश गिरे वगैर और खेत जोते वगैर की जमीन में बीज डालेंगे तो वह अंकुरित नहीं होंगे । जमीन चाहे जितनी उत्तम हो, परंतु अच्छी तरह जोती न गयी हो और जमीन धूप से तपी न हो तो बारिश गिरने पर भी बराबर उगता नहीं । यह एक सत्य प्रमाणसिद्ध हकीकत है । इसमें कोई शंका नहीं करता, उसमें शंका नहीं उठती । उसी तरह आध्यात्मिक प्रकार का जीवन, चेतनात्मक जीवन प्रकट करने के लिए वैसी भूमिका की जरूरत है। उसके बगैर भगवान रूपी बीज विकसित नहीं हो सकता । भगवान का स्वरूप-साकार स्वरूप-सोने के मुलम्मे जैसा है । अग्नि के बगैर गरमी नहीं, जहाँ अग्नि वहाँ गरमी । चेतन के अनेक लक्षण हैं । एक तो तादात्म्यभाव ।

हम भाव होते हुए भी प्रकृति और स्वभाव से व्यवहार करते हैं । सिर्फ उसको ही अनुभव करते हैं । हमारे में दो तत्त्व हैं : प्रकृति और पुरुष । पुरुष अंदर है, परंतु वह सुषुप्त दशा में है, प्रकृति अग्र भाग में है ।

प्रकृति

प्रकृति द्वंद्व और गुण की बनी हुई है । उसके द्वारा जो कर्म होते हैं, वे द्वंद्व से भरे हुए होते हैं । कोई भी एक जीव ही सत्त्वगुण की प्रकृति वाला होता है, बाकी तो रजस-तमस से ही प्रवृत्ति करते होते हैं । द्वंद्व होने से ही आमने-सामने के पहलूओं में काम करते हैं। द्वंद्व यानी सुख-दुःख, पाप-पुण्य, प्रकाश-अंधकार आमने-

सामने जोड़े में ही काम कर रहे हैं । हमारे में चेतन है, परंतु वह प्रगट नहीं होता । हमारे कर्म के medium-माध्यम प्रकृति और स्वभाव रहेंगे । जिस तरह नौकर स्वतंत्र नहीं है परंतु कहे अनुसार बरतता है, उसी तरह प्रकृति वह स्वतंत्र नहीं है । इससे चेतन प्रकट हो तो प्रकृति उसके वश में रहेगी ।

हमारी जीवदशा में अनेक जन्मों के संस्कार हैं । उसके भाव उठते हैं, उसके अनुसार हम काम करते हैं । प्रारब्ध के कारण स्वजन मिलते हैं । हम प्रकृति से बँधे हुए हैं । इससे चेतन होते हुए भी भान जागता नहीं । इससे हम ब्रह्म-चेतन का भी अनुभव नहीं कर सकते । भगवान या चेतन सब में है । कोई किसी में नहीं है ऐसा नहीं है, परंतु हम अनुभव नहीं कर पाते । प्रकृति का मुख चेतन के प्रति नहीं है ।

चेतन का अनुभव

गुण द्वंद्वों से अभ्यस्त होते हैं । उसमें डूबे रहते हैं, इससे उसका अनुभव नहीं होता । ब्रह्म की तरह क्यों नहीं बरत सकते हैं ? गुलामों की तरह क्यों काम करते हैं ? हमारे में ब्रह्म-चेतन है, फिर भी हम क्यों ऐसा बरत रहे हैं ? अनुभव से मालूम पड़ा कि हमारा चेतन प्रकृतिरूप बन गया है, चेतन प्रकृति है ऐसा बन गया है । चेतन को अनुभव करने के लिए द्वंद्वातीत, गुणातीत हों, उससे पर हो जाएँगे तो अनुभव कर सकेंगे । किस तरह हो सकेंगे उसकी खोज चली । वह करते देखा कि प्रकृति में अनंतता-विविधता है, वह एक ही मार्ग द्वारा निश्चित नहीं हो सकता । किस तरह जल्दी से जल्दी वैसा हो सके उसके लिए अलग-अलग संप्रदाय-धर्मधारणा की प्रणालिका की स्थापना हुई । वैसा करते करते लगा कि साधना कौन कर सकता है ? जिसे जिसे ब्रह्म को पहचानने की-जानने की चटपटी-भूख जागी है वही **इस** मार्ग पर

जा सकता है । जिस तरह संसार में धन की आवश्यकता होती है और इससे हम उस के लिए प्रयत्न करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति उसके लिए (धन कमाने) प्रवृत्ति में पड़ते हैं, कहना नहीं पड़ता है । उसमें उपदेश नहीं देना पड़ता । महात्मा, प्रवचनकार, कथाकार हो गये । किसीको कहना नहीं पड़ता । कमाने की भूख लगे तो प्रवृत्त होना पड़ता है । उपदेश की जरूरत नहीं पड़ती है क्योंकि गरज होती है ! उसी तरह **इस** मार्ग में गरज नहीं है, गरज प्रकट होगी तो यह काम सरलता से हो सकेगा । हम चेतन के अंश हैं, चेतन हैं इससे उसका थोड़ा गुण है । हम प्रकृति वश जीवित रहते हैं ।

हमारे समाज में संगठित रूप से एक दूसरे के लिए थोड़ा-बहुत खर्च करने की-सहन करने की वृत्ति होती है । जहाँ-जहाँ मेल होता है, वहाँ वैसी वृत्ति रहती है, जहाँ मेल नहीं होता, वहाँ दूर रहते हैं, यह संसार की अनुभव प्राप्त हकीकत है ।

हमारा वर्तन

दूसरे का स्वभाव-प्रकृति खराब हो वहाँ मेल, सद्भाव नहीं रखते, परंतु यदि हम दूसरों के दोष देखेंगे नहीं तो भूमिका ऐसी विकसित होगी कि दूसरों के साथ सुमेल रख सकते हैं । कर्म के साथ व्यक्ति जुड़ा हुआ होता है । इससे यदि हमारा वर्तन सरलतापूर्ण, सद्भावपूर्ण होगा तो कर्म अच्छा होगा, हमारी तकलीफें कम होती जाएँगी । हमें परेशानी नहीं होगी । हमें हमारा कर्म मददरूप होगा । दिल में सरलता प्रकट होती जायगी, और उस तरह भूमिका प्रकट होती जायगी ।

मनुष्य साधना न करे, नाम न ले, चेतन में मानता न हो, इससे चेतन का अस्तित्व मिट नहीं जाता । इस तरह जीवनव्यवहार में मिलनसार स्वभाव रखेंगे, सब के साथ सद्भाव रखेंगे तो जीवन

में मुलायमता प्रकट होगी और वैसा होगा तो भूमिका विकसित होगी, तब अभिरुचि जागेगी । चेतन प्रति की जागृति विशेष प्रकट होगी । चेतन को एक तरफ रखें तो भी संघर्ष में आये बिना जीवनव्यवहार के काम हो वह भी बड़ी बात है । इससे उसके लिए--स्वार्थ के लिए--भी दूसरे जीवों के साथ हिल-मिलकर—दुर्गुणों के प्रति उपेक्षा करके--वर्तन करेंगे तो कर्म में सरलता प्रकट होगी । और ऐसा होगा तो शांति, प्रसन्नता घायल नहीं होगी । चेतन को माने बिना भी इस तरह की टेक्‌निक की जरूरत है ।

चेतन के अनुभव की शर्त

यह स्थूल व्यवहार की हकीकत है । चेतन के प्रवेश की बात करें तो लगे बिना नहीं रहेगी । चेतन के कारण सब काम हो सकते हैं । ऐसा चेतन है । यह बुद्धि कबूल करे ऐसा है । भगवान को मानो या न मानो फिर भी कबूल करना पड़ता है । प्रकृति जड़ है । तमस, रजस और सद्‌गुणों से अभ्यस्त होती है । भगवान में गुण नहीं है, फिर भी गुणातीत है । प्रकृति से अभ्यस्त हम सब कर्म करते हैं । चेतन का अनुभव करना हो उस तरह से प्रवृत्त होना पड़ेगा और उसे प्रगट करना हो तो द्वंद्वातीत और गुणातीत हुए बिना दूसरा रास्ता ही नहीं है । द्वंद्वातीत, गुणातीत होना ही पड़ेगा और तो ही **उस**का अनुभव कर पाओगे । शहर को संपूर्ण रूप से देखना हो तो विमान में बैठकर चक्कर लगाएँगे तो ही ख्याल आएगा । इससे प्रकृति में रहकर चेतन का अनुभव नहीं हो सकता । उससे ऊपर जाना पड़ेगा । उससे ऊपर जाने के लिए अनुभविओं ने अनेक प्रकार के रास्ते बताये हैं । उन्होंने देखा कि संसारव्यवहार में **जीव** उलझे हुए हैं । व्यक्ति के साथ, संबंधिओं के साथ तद्रूप-ओतप्रोत हो गये हैं । इससे दूसरी रीति से (ऊपर जाने का) नहीं

बन सकेगा। फिर, वे अन्य मार्ग भी नहीं ले सकते हैं। और कठिन साधनों द्वारा साधना भी नहीं कर सकेंगे। इससे ऐसा जीवों को उलझनें, समस्याएँ, मुस्किलें इत्यादि में शान्ति, सहारा, सांत्वना की आवश्यकता रहती है। अनुभविओं ने सोचा कि ऐसे जीवों को ऐसी तंग परिस्थिति में हल्कापन कैसे प्राप्त हो ? इससे करुणा लाकर अनुभव द्वारा बताया कि भगवान का स्मरण उनको उबारेगा। उससे मानसिक स्थिति हलकी हो जायगी। भगवान का यह स्मरण सभी प्रकार के जीव कर सकते हैं। उसके लिए अलग समय की भी जरूरत नहीं पड़ती है, चलते-फिरते, काम करते-करते भी वह ले सकते हैं ऐसी शक्यता है।

उलझन हल करने का प्रयोग

कोई फिर पूछे कि स्मरण करने से उलझन कैसे दूर हो जायगी ? वह तो मानसशास्त्र का विषय है। उसका जिसे अभ्यास हो, वह इस हकीकत को स्वीकार करेगा। जब हम उलझन में हों तब उसका हल नहीं मिलता। जब-जब समस्या-उलझन आये तो उसमें डूबे मत रहो। उस समय एकांत में स्मरण, प्रार्थना, भजन इत्यादि में मन पिरो दो। अपने आप हल मिल जायगा। कोई मित्र हो, जिसके साथ प्रेम हो उससे मिलो, उससे बातचीत करो। उस तरह मन हलका हो जायगा। जो समस्या होगी वह तो subconcious स्थिति में रही होती है। इससे अपने आप हल मिल जायगा। यह (practical) व्यावहारिक प्रयोग है। संसारी मित्रों को यह प्रयोग करने जैसा है। जब ऐसा करोगे तब पता पड़ेगा कि **मोटा** ने जो हकीकत कही है, वह सच्ची ही है। समझदार होंगे तो ऐसी उलझन या समस्या आये तब उस स्थिति में पड़ा नहीं रहता। उसमें पड़ा रहने से अधिक गाढ़ होगा। ज्यादा उलझोगे।

इसलिए ऐसे समय में उससे दूर हो जाओ। विचार की (channel) चेनल (प्रवाह) बदल दो। मित्र इत्यादि के साथ बैठकर बातचीत करो। गप मारो तो भी मन हलका होगा। इससे अपने आप समस्या का हल मिलेगा। यदि ऐसा करते-करते भी हल न मिले तो भगवान में श्रद्धा हो और स्मरण, प्रार्थना, सत्संग इत्यादि करो तो ज्यादा अच्छा हल मिल जायगा।

संसारव्यवहार में मुश्किलें, उलझनें, समस्यायें तो आयेंगी ही, सुखदु:ख भी आयेंगे। उससे दूर नहीं हो सकते। उसकी शक्यता भी नहीं। फिर कोई प्रश्न पूछेगा कि भगवान ने यह सब क्यों किया? यह प्रश्न मूर्खता का है। भगवान ने साथ में बुद्धि भी दी है।

बुद्धि की शक्ति

बुद्धि तो प्रकाश देने वाली है। कोई कहेंगे कि गलत बात। मैं कहता हूँ, संसारव्यवहार में काम की समझ किस तरह आती है। बुद्धि के कारण ही ऐसा होता है। इससे वह प्रकाश देनेवाली है। चेतन के नज़दीक का करण-अंग बुद्धि है। उसका उपयोग करते नहीं। इससे वह मोटी है। उसका आप उपयोग करोगे तो उसका हार्द भी आपको समझ में आएगा। भगवान ने बुद्धि दी है। विवेकशक्ति (power of discrimination) सही-गलत पहचान ने की शक्ति दी है। उसका उपयोग करता नहीं। **बुद्धि शब्द की मूल धातु 'बुध' अर्थात् जानना। हमें सभी का मूल समझाये उसका नाम बुद्धि।** उसका उपयोग करे तो रहस्य समझ में आएगा। जिस कार्य में बुद्धि का प्रवेश हो उस उस वस्तु में प्रकाश देती है। गीतामाता कहती है कि अभी बुद्धि मोहकलिल मोह रूपी कीचड़ से सनी हुई है। जैसे हमारे चश्मे हो वैसा रंग दिखेगा।

काले चश्मे में से सफेद नहीं दिखेगा । हमारी बुद्धि भी मोह, काम, क्रोध इत्यादि कीचड़ से सनी हुई हो तो चेतन का अनुभव कैसे होगा ? बुद्धि के संस्कार अलग प्रकार के होते हैं । वे सब पूर्वग्रहों से मुक्त हो तो सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा ।

अनुभवी पुरुषों ने देखा कि बुद्धि ही ज्ञान की प्रेरणा देने वाली है । उसे ही पकड़ो । और बुद्धि को शुद्ध कर डालो । शास्त्रकारों ने अलग-अलग मार्ग खोजे हैं, परंतु सब तो वह नहीं कर सकते । इससे **बुद्धि शुद्ध करने का सब से सरल उपाय भगवान का स्मरण ही है ।** कई मित्र कहते हैं कि भगवान का नाम लेने से क्या बुद्धि सुधरेगी ?

चित्त के संस्कार

हमारे में संस्कृति की परंपरा से संस्कार पड़े हैं । (भगवान का स्मरण) अनेक आपत्तिओं से मुक्त करता है । उसने अनेक भक्तों की विविध समस्याओं का हल किया है । आज भी वैसा होता है । कई समस्याएँ इसके द्वारा हल (solve) हो सकी हैं । ऐसा भगवान का स्मरण है । भावना तो हमारे लोगों में है । प्रयोग द्वारा यह देखा गया है । भूत में नहीं मानने वाले भी अंधेरे में लटकती धोती देखकर भी डर जाते हैं । चित्त में संस्कार पड़े हुए हैं, वे कहाँ जायेंगे ? परंपरा के संस्कार चित्त में रहे हुए हैं और उसके साथ भावना भी होती है । भावना तो स्नेह है, वह तो चिपका देती है ।

तोते जैसा मत बोलो

तोते जैसा बोलो तो क्या लाभ ? मनुष्य की और तोते की शरीररचना में अंतर है । मनुष्य और तोते के शरीरविकास में जमीन आसमान का अंतर है । तोते की बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् विकसित

नहीं हैं । हम तोते की तरह नाम नहीं ले सकते । हम कर्म करते हों तो भी भावना है, उसका पुट लगा हुआ है, अनेक जन्मों का और अनेक काल का । वह कहाँ जायगा ? हम वह सोचते नहीं हैं । उस पुट के कारण लगातार स्मरण हो तो भावनामय वातावरण हो । और जैसे अधिक भावनामय हो वैसे वह बुद्धि मोह रूपी कीचड़ से मुक्त होगी और उसके ही स्मरण में रंगी हुई हो जाती है । बुद्धि को भावना का पुट लगे तो आयुर्वेद में दवाओं को पुट लगाया जाता है उस तरह बुद्धि को भगवान के स्मरणरूपी भावना का पुट लगाने से मोह का कीचड़ नष्ट हो जायगा ।

अनुभव का निचोड़

हम तो नकारात्मक रीति से तरंग बहाते हैं । और उसकी भूख लगी नहीं है, जागी नहीं है । भगवान का स्मरण एक ऐसी वस्तु है, जो हर समय कर सकते हैं, दूसरा नहीं हो सकता । मनुष्य संसारव्यवहार के भार से हलका कैसे हो सकता है ? वैद्य जिस तरह दवा देते हैं, उसी तरह अनुभविओं ने संतभक्तों ने जीवन न्योछावर करके, समर्पण करके निचोड़ दिया है । **नामस्मरण से हलकापन प्रगट होगा, बुद्धि तीक्ष्ण होती है । सूक्ष्म होती है ।** अपने अनुभव से यह निचोड़ दिया है ।

सत्संग की भावना

अनेक कहते हैं कि भक्त बुद्धू होते हैं । उल्टा वह किसी से नहीं हो सके, उसे अनेक समस्यायें प्रज्ञास्वरूप हो जाती हैं । **भक्ति सदैव ज्ञानात्मक होती है, भक्ति हो वही भक्त ।** भगवान स्वरूप हो तो वह कहीं भी प्रवेश करता है । आप तो ताले लगाकर बैठे हो, खंभात के ताले लगाते हो, दाखिल होने ही नहीं देते । महात्मा लोगों को तो हिलना-मिलना होता है । सत्संग की महिमा बहुत बताई

गई है, लेकिन भावना चाहिए न ? वैद्यों के वहाँ दवा लेने की गरज-भावना होती है, वैसी सत्संग करने के लिए भी भूमिका चाहिए। ऋषिमुनिओं ने कहा है कि सत्संग करो, भावना विकसित करो। मैं सच कहता हूँ कि मेरे गुरुमहाराजने (possible reality) वास्तविकता की भूमिका पर पैर रखकर मुझे आज्ञा की थी, 'जिसका आचरण कर सको वही बात करना।' तुम सत्संग करो परंतु किसका करना उसकी समझ नहीं है।

सत्संग की भावना रखो तो दोस्ती होगी। गुरु के साथ कैसे बरतना ? शरणागति कैसे करो ? दोस्ती करो तो मालूम पड़ेगा। मैं माँगू और न हो तो मना कर देना। **मैंने कई बार देखा है कि लोग खून कर डालते हैं, दोस्ती करो तो अपने आप मालूम पड़ेगा।**

दोस्ती विकसित करो

हम व्यवहार में किसी की नहीं सुनते हैं, परंतु मित्र की सुनते हैं। हमारा पुत्र यदि ग़लत रास्ते पर जा रहा होगा तो जिसकी दोस्ती हो उसके द्वारा उसे समझाने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए बात समझाने के लिए भी दोस्ती की आवश्यकता है। हम तो गधे-पामर हैं, परिचय करने पर समझ में आएगा। इसलिए सच्ची दोस्ती विकसित करो। इससे भावना विकसित होगी। हमारे साथ शरणागति-प्रेम विकसित करो, अनुकूल होने की भावना प्रगट करो, ज्यादा विचार मत करो। यदि ऐसा प्रेम करें और सत्संग करें तो बुद्धि भी सुधरेगी। ऐसा मेरा अनुभव है। मैं गुरुमहाराज के पास जा सकूं ऐसी मेरी स्थिति नहीं थी और साधना में कठिनाई होती। जैसे जैसे सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम साधना में (जिस का वर्णन भी

अशक्य) आती कठिनाइओं पुरुषार्थ करते-करते दूर होती गईं, उसका ज्ञान आ गया । हृदय में भाव प्रकट करने के लिए, मदद विकसित करने की कला सीखनी पड़ेगी । प्रेम का अनुभव भी संसारव्यवहार में लो, जुड़े हुए लोगों के साथ प्रेम करो । प्रेम करो तो उमंग से करो । त्याग करते सहन करना पड़ेगा । चेतन, ब्रह्ममय चेतन का त्यागयज्ञ हरपल चलता है । त्याग बलपूर्वक भी करना पड़ता है । सच्चा त्याग आनंद प्रगट करता है ।

प्रेम का लक्षण

संसारव्यवहार में अमुक काम तो करने ही पड़ते हैं । उसमें मना नहीं कर सकते हैं । और जब करना ही पड़ता हो तब बलपूर्वक करने से मनुष्य की विकृति होती है, स्वयं को ही खोना पड़ता है । इससे हम ज्यादा बिगड़ते हैं, जीवदशा में नकारात्मक स्वरूप में प्रकट होते हैं, जबकि सच्चे प्रेम से विशेष हलकापन मिलता है । **प्रेम वह त्याग का स्वरूप ही है ।** वह शक्ति प्रगट करता है, गुणयुक्तता बढ़ाता है । यह मान्य हो सके ऐसी हकीकत है, उसके लिए दलील नहीं हो सकती । इतना भी लोग नहीं कर सकते । उससे साधना में आंतरिक बल मिलता है और भगवान का स्मरण सब कोई कर्म करते करेंगे तो **इस** मार्ग पर-भगवान के मार्ग पर जा सकोगे, संसारव्यवहार के कर्म अच्छी तरह कर सकोगे ।

शूरों का मार्ग

यदि संसार के मिले हुए कर्म उत्तम रीति से करोगे तो गुणशक्ति बढ़ेगी । ऐसा करते-करते निरहंकारी, निरासक्त, निर्मोही होते जायेंगे । कर्म तो करने का ही है । कर्म छोड़ने वाला कायर-नामर्द है । शरीर है, तब तक कर्म तो करना ही है । भक्ति तो पराक्रमी के लिए है । यह सब न हो तो भक्ति नहीं कर सकोगे । इसलिए

संसार का कर्म अनमने भाव से, बेगार की तरह मत करो । जो कर्म करो वह बहुत उमंग से, उल्लास से करो, स्वार्थ के लिए भी कर्म उत्तम प्रकार से करो । जैसी भूमिका प्रकट होगी वैसा भी जोश भी प्रकट होगा, और वह जोश किसी प्रकार से काम में आएगा । सदैव कुएँ में होगा तो उबारा में आएगा । जिस क्षेत्र के कर्म से खमीर प्रगट हो ऐसा कर्म करो । ऐसा खमीर होगा तो भगवान का नामस्मरण ले सकेंगे । संसारव्यवहार में मनुष्यजीवन दुर्लभ है । उसका रहस्य, महत्त्व, महत्ता हम नहीं समझते । ग्रामीण हीरे को काँच ही समझेगा । हम उसे समझते हैं । इससे संभाल कर रखते हैं । मनुष्यजीवन से चेतन का अनुभव हो सकता है । मनुष्ययोनि में द्वंद्व की रचना है, दूसरे में नहीं है । द्वंद्व अर्थात् दो आमने-सामने के पक्ष । जहाँ तक अच्छा बनता है या चलता है वहाँ तक मालूम नहीं पड़ता, जब संघर्ष होता है, तभी मालूम पड़ता है ।

द्वंद्व का हेतु

द्वंद्व की रचना ज्ञान प्रगट करने के लिए है । वहाँ तक सच्ची समझ नहीं आती । मनुष्यदेह बहुत दुर्लभ कहा गया है । आज भी वह भावना है । मनुष्यजीवन हमें मिला है, उसे हम सार्थक करें । चाहे एक कदम जितनी उस तरफ (चेतन तरफ) हमारी गति हो । जितना हो सके उतना भी अच्छा है । हमारे पास पाँच पैसे हो तो एक पैसै जितना भी अच्छा कर्म करना चाहिए । संग्रह करोगे वह नहीं चलेगा । वह त्याग से चलता है । तुम रख लोगे वह नहीं चलेगा । दूसरों के लिए खर्च करना पड़ेगा । छुटकारा नहीं होगा । तुम कंजूस को देखो, उसे भी पुत्र-पुत्री की शादी में खर्च करना ही पड़ता है, दूसरों के लिए भी कुछ करना पड़ता है ।

तुम्हारे में शक्ति हो उसे सन्मार्ग की तरफ मोड़ो तो शांति,

प्रसन्नता, आनंद बढ़ेंगे। वह चेतना का गुणधर्म है और वह मनुष्यदेह में विकसित हो सकता है। उसका विकास मनुष्यदेह से ही हो सकता है। देव को भी मनुष्यशरीर धारण करना पड़ता है। उससे ही यह हो सकता है। इसलिए मनुष्यजन्म को बहुत दुर्लभ कहा है। इसलिए जो अमूल्य देह मिला है, उस शरीर के अंदर सद्‌भावना, सुमेल, त्याग इत्यादि प्रकट करो वह भी उत्तम है।

दिनांक :२-१०-१९६०

॥ हरि:ॐ ॥

आरती

ॐ शरणचरण लीजिए, प्रभु शरणचरण लीजिए
पतित को उबार लीजिए (२) कर पकड़ हृदय लगा लीजिए...
ॐ शरणचरण.

मन-वाणी के भाव आचरण में उतरें प्रभु (२)
मन, वाणी और दिल को (२) कृपा कर एक करें...ॐ शरणचरण.

सभी स्वजनों के साथ, दिल में सद्‌भाव जगें, प्रभु (२)
भले अपमान हुए हों (२) तब भी भाव बढ़े...ॐ शरणचरण.

हीन प्रकार की वृत्ति; ऊर्ध्वगमन करने, प्रभु (२)
प्रभुकृपा से मथन करावें (२) चरणशरण पाने...ॐ शरणचरण.

मन के सकल विकार, प्राण की वृत्ति, प्रभु (२)
बुद्धि की सभी शंकाएँ (२) चरणकमल में द्रवित हो...ॐ शरणचरण.

जैसे भी हो प्रभु, वैसे ही दीखें, प्रभु (२)
मति मेरी खुली रहे (२) स्पष्ट ही परखें...ॐ शरणचरण.

दिल में कुछ भरा हो, उससे सब उल्टा, प्रभु (२)
मुझसे कभी न हो (२) ऐसी मति दें...ॐ शरणचरण.

जहाँ जहाँ गुण और भाव, वहीं दिल मेरा टिके, प्रभु (२)
गुण और भाव की भक्ति (२) मेरे दिल में संचरित करें...ॐ शरणचरण.

मन, मति, प्राण प्रभु । तुम्हारे भाव से पिघले प्रभु (२)
दिल में तुम्हारी भक्ति की (२) लहरें उछले.... ॐ शरणचरण.

– मोटा

हरि:ॐ आश्रम में उपलब्ध हिंदी पुस्तकों का लिस्ट

क्रम	पुस्तक	प्र.आ.
१.	पूज्य श्रीमोटा एक संत	१९९७
२.	कैंसर का प्रतिकार	२००८
३.	सुख का मार्ग	२००८
४.	दुर्लभ मानवदेह	२००९
५.	प्रसादी	२००९
६.	नामस्मरण	२०१०
७.	हरि:ॐ आश्रम (श्रीभगवान के अनुभव का स्थान)	२०१०
८.	श्रीमोटा के साथ वार्तालाप	२०१२
९.	विवाह हो मंगलम्	२०१२
१०.	बालकों के **मोटा**	२०१२
११.	विद्यार्थी **मोटा** का पुरुषार्थ	२०१२
१२.	मौनमंदिर का मर्म	२०१३
१३.	मौनमंदिर का हरिद्वार	२०१३
१४.	मौनएकांत की पगडंडी पर	२०१३
१५.	मौनमंदिर में प्रभु	२०१४

●

English books available at Hariom Ashram Surat. January - 2020

No.	Book	F. E.
1.	At Thy Lotus Feet	1948
2.	To The Mind	1950
3.	Life's Struggle	1955
4.	The Fragrance Of A Saint	1982
5.	Vision Of Life - Eternal	1990
6.	Bhava	1991
7.	Nimitta	2005
8.	Self-Interest	2005
9.	Inquisitiveness	2006
10.	Shri Mota	2007
11.	Rites and Rituals	2007
12.	Naamsmaran	2008
13.	Mota for Children	2008
14.	Against Cancer	2008
15.	Faith	2010
16.	Shri Sadguru	2010
17.	Human To Divine	2010
18.	Prasadi	2011
19.	Grace	2012
20.	I Bow At Thy Feet	2013
21.	Attachment And Aversion	2015
22.	The Undending Odyssey (My Experience Of Sadguru Sri Mota's Grace)	2019
23.	Pujya Shri Mota Glimpses of a divine life (Picture Book)	2020
24.	Genuine Happiness	2021

●

॥ હરિ:ૐ ॥

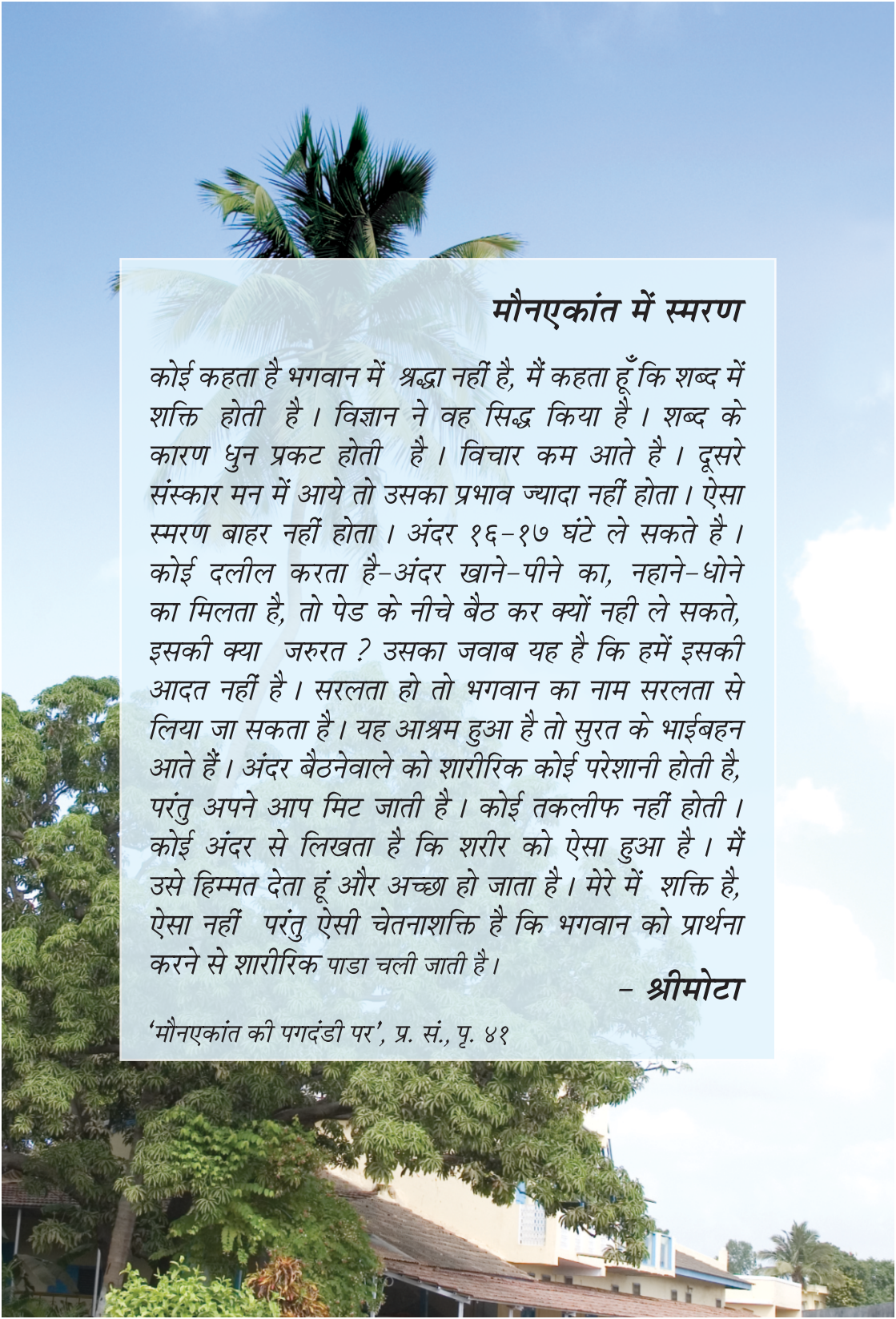

मौनएकांत में स्मरण

कोई कहता है भगवान में श्रद्धा नहीं है, मैं कहता हूँ कि शब्द में शक्ति होती है। विज्ञान ने वह सिद्ध किया है। शब्द के कारण धुन प्रकट होती है। विचार कम आते है। दूसरे संस्कार मन में आये तो उसका प्रभाव ज्यादा नहीं होता। ऐसा स्मरण बाहर नहीं होता। अंदर १६-१७ घंटे ले सकते है। कोई दलील करता है-अंदर खाने-पीने का, नहाने-धोने का मिलता है, तो पेड के नीचे बैठ कर क्यों नही ले सकते, इसकी क्या जरुरत ? उसका जवाब यह है कि हमें इसकी आदत नहीं है। सरलता हो तो भगवान का नाम सरलता से लिया जा सकता है। यह आश्रम हुआ है तो सुरत के भाईबहन आते हैं। अंदर बैठनेवाले को शारीरिक कोई परेशानी होती है, परंतु अपने आप मिट जाती है। कोई तकलीफ नहीं होती। कोई अंदर से लिखता है कि शरीर को ऐसा हुआ है। मैं उसे हिम्मत देता हूं और अच्छा हो जाता है। मेरे में शक्ति है, ऐसा नहीं परंतु ऐसी चेतनाशक्ति है कि भगवान को प्रार्थना करने से शारीरिक पाडा चली जाती है।

- श्रीमोटा

'मौनएकांत की पगदंडी पर', प्र. सं., पृ. ४१